॥ ओ३म् ॥

सन्देश ग्रन्थ माला का पंचम पुष्प

योग विज्ञान

योगीराज महर्षि दयानन्द सरस्वती

लेखक :

ब्रह्मचारी बलदेव नैष्ठिक

वैदिक योगाश्रम, शुक्रताल, जि० मु०नगर [उ.प्र.]

अयमेव परमोधर्मः यद्योगेनात्मदर्शनम् ।

योग द्वारा आत्मा-दर्शन करना ही परम धर्म है ।

—महर्षि याज्ञवल्कय

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धि क्षये ज्ञान दीप्तिराविवेकख्यातेः ।

योगाङ्गों के अनुष्ठान से अशुद्धि का नाश हो जाता है और ज्ञान दीप्त होकर आत्मा परमात्मा का विवेक हो जाता है ।

—महर्षि पतञ्जलि

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत् सुख भवेत् ।
न शक्यते वर्णयितु गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ।

॥ मैत्र्युपनिषद् ६३४.

जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है, उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता, क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है ।

—महर्षि दयानन्द

॥ ओ३म् ॥

सन्देश ग्रन्थमाला का पंचम पुष्प

योग विज्ञान

(प्रथम भाग)

लेखक :
ब्रह्मचारी बलदेव नैष्ठिक

प्रकाशक :
वैदिक योगाश्रम, शुक्रताल,
जि० मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

[मूल्य १-२५ रु०]

तदा द्रष्टुः स्वरुपे ऽवस्थानम् योग दा १।३

योगाभ्यास द्वारा आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

प्रथम संस्करण	१००० प्रतियां
सृष्टि संवत्	१९७२९४९०७१
दयानन्दाब्द	१४६
विक्रमाब्द	२०२७
अक्टूबर	१९७० ई०
मूल्य	१)२५ पैसे

पुस्तक-प्राप्ति स्थानम्।

वैदिक योगाश्रम, पो० शुक्रताल

जि० मुजफ्फरनगर [उ० प्र०]

दो शब्द

योग वह ज्ञान है जिस से मानव अपने जीवन का सर्वांगीण विकास करने में समर्थ हो जाता है। सर्वांगीण विकास का अर्थ है शारीरिक उन्नति, मानसिक उन्नति, बौद्धिक उन्नति, आत्मिक उन्नति, चारित्रिक उन्नति और सामाजिक उन्नति।

मनुष्य की हार्दिक कामना होती है कि उस का शरीर निरोग, सुडौल सुगठित और सुन्दर हो, मन और इन्द्रियां उनके वश में रहने वाली हों। इस इन्द्रिय समूह का दास हो कर जीवन को नष्ट नहीं करना चाहता। दसों इन्द्रियों और मन का विज्ञान प्राप्त करना भी वह अपने मनुष्य जीवन का ध्येय समझता है। शरीर और मानसिक उन्नति के साथ २ वह अपने मस्तिष्क का विकास भी चाहता है। क्योंकि संसार में बुद्धि के बिना कुछ भी नहीं है। अपने चरित्र का निर्माण और सामाजिक विकास भी इतनी आवश्यक चीजें हैं। इसके विना भी मनुष्य जीवन निरर्थक है। आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का विज्ञान प्राप्त करना और मुक्ति की प्राप्ति करना तो जीवात्मा का लक्ष्य ही है। सुख शान्ति प्राप्त करना प्रत्येक जीवधारी की मूल कामना हैं। इन सभी चीजों को प्राप्त करने के लिए योग साधन की परम आवश्यकता है। संक्षेप में यूं कहना चाहिए :—

यदि आप अपने शरीर को स्वस्थ, निरोग और बलवान देखना चाहते हैं

यदि आप अपने मानसिक विकास को चाहते हैं,
यदि आप इन्द्रियों और चंचल मन को वश में करना चाहते हैं,
यदि आप चरित्र का निर्माण करना चाहते हैं,
यदि आप सच्चा सुख और शान्ति चाहते हैं,
यदि आप दुःख से छुटना चाहते हैं,

यदि आप दीर्घायु चाहते हैं,
यदि आप राष्ट्र का निर्माण चाहते हैं,
यदि आप आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं
यदि आप मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो योग विज्ञान प्राप्त कीजिए

योग साधना बहुत गम्भीर विषय है। इस गम्भीर विषय को सु करना योग विज्ञान ग्रन्थ का कार्य है। योग की क्या आवश्यकता है ? यं कैसे करें ? योग साधना कौन कर सकता है कौन नहीं ? योग की क्या-क बाधायें हैं ? ध्यान समाधि क्या है। इन अनेक विषयों का स्पष्टीकरण इ ग्रन्थ में किया जायेगा। इस प्रथम भाग में केवल यम नियमों का वर्णन कि गया है जो केवल योग साधन के लिए भूमिका मात्र है। इस के आ आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि का विस्तृत वर्णन अगले भाग में किया जायेगा। अन्य भागों को भी यथा शीघ्र प्रकाशि किया जा रहा है।

बलदेव नैष्ठिक योगी नामनुचरः

संस्कृति-संदेश

भारतीय संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने वाला, भ्रष्टाचा का उन्मूलक, राष्ट्रोत्थान का शङ्खनाद करने वाला

—: एक मात्र मासिक पत्र :—

वार्षिक मूल्य ५)

प्रकाशक :—

वैदिक योगाश्रम—शुक्रताल [मुजफ्फरनगर]

❀ ओ ३ म् ❀

योग विज्ञान

योग की आवश्यकता क्या है ?

योग की आवश्यकता मनुष्य उस समय अनुभव करता है जब कि वह संसार के भोगों में सच्चा सुख प्राप्त न करके विषयों की भयंकर आग में जल उठता है। सारे जीवन दर-दर की ठोकरें खाने पर भी जब संतोष की श्वांस नहीं मिलती तब यह मनुष्य विषय भोगों से दूर किसी मार्ग को खोजने के लिए तड़प उठता है। उस समय कोई पर्वतों की ओर भागता है, कोई जंगलों में जाता है, कोई सन्तों महात्माओं की शरण में जाकर अपना करुणा-क्रन्दन करता है, कोई मौन धारण कर लेता है, कोई सर्वस्व त्याग कर जीवन-भर घोर तप तपने का व्रत करता है। जब इनसे पूछा जाता है कि आप लोग सब कुछ छोड़ कर क्यों भागे जा रहे हैं ? उस समय सबका एक ही उत्तर है कि:-

दिल लगने की सूरत कहीं न देखी हाय।
जो कुछ देखा सो खाक पत्थर देखा॥

इनमें से कोई कहता है:—

"भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः।"

"हम चले थे भोग भोगने परन्तु भोग तो भोगे नहीं, भोगों ने हमें भोग डाला।"

कोई कहता है:—

न जातु कामः कामानामुप भोगेन साम्यति ।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

बिषयों से मन को तृप्त कराना नहीं अच्छा ।
जलती अग्नि घी से बुझाना नहीं अच्छा ॥

कोई कहता है:—

This is vanity. All is vanity. "यह सब कुछ व्यर्थ है ।"

कोई कहता है:—

आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासंगि परस्य चित्तं न जायते वै परमार्थ संगि ॥१॥

आज मैंने जान लिया है कि मृत्यु पर्यन्त मनोरथों का अन्त नहीं है। विषयों में लगा हुआ मन कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता ।

सांख्य दर्शन के रचियता कपिल ऋषि लिखते हैं:—

न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्ति दर्शनात् ॥ १ । २ ॥

धनादि सब दृष्ट भोगों से सब दुःखों की निवृति नहीं हो सकेगी, क्योंकि धन आदि साधन एक दुःख को हटाते हैं तो दूसरे दुःखों को पैदा भी करते हैं और फिर साधन स्थायी नहीं हैं । आज हैं कल नहीं । ये सब नाशवान हैं । इसलिये आज ज्यों-ज्यों संसार में सुख के साधन बढ़ रहे हैं त्यों-त्यों दुःख भी बढ़ रहे हैं। कोई सुखी नजर नहीं आता । इसलिये यह निश्चित है कि सांसारिक भोगों से सच्चा सुख नहीं मिलता।

गीता में मनुष्य का सारा भ्रम दूर कर दिया गया है। वहां साफ-साफ लिखा है:—

विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

अर्थः—विषय और इन्द्रियों के द्वारा जो सुख मिलता है वह प्रारम्भ में अमृत के तुल्य होता है परन्तु अन्त में विष के समान हो जाता है। ऐसा राजसिक सुख होता है। यह वास्तविक सुख नहीं होता। 'दुनिया के सुख सारे ऐसे ही हैं। आरम्भ में तो अमृत के समान लगते हैं परन्तु थोड़ी देर बाद ही हृदय को जलाने वाले हो जाते हैं। हृदय में प्रायश्चित की आग को पैदा कर देते हैं। मनुष्य भोग को करके पश्चाताप करता है। यही भोगों की निःसारता का प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसको हर आदमी अनुभव करता है।

बार-बार का यह अनुभव ही मनुष्य को योग साधना करने के लिए विवश करता है। अतः सच्चा सुख पाने के लिये योग की भारी आवश्यकता है। पुरातन इतिहास की घटनाओं से भी यही सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजों ने भी योगाभ्यास के द्वारा ही सुख की प्राप्ति की थी।

महर्षि याज्ञवल्क्य जी बानप्रस्थाश्रम ग्रहण करने वाले थे। वन की ओर प्रस्थान करने से पूर्व उन्होंने अपनी भार्या मैत्रेयी और कात्यायनी को बुलाकर कहा कि मैं बनस्थ होने जा रहा हूं, अतः मैं चाहता हूं कि तुम दोनों को सारी सम्पत्ति दो भागों में बांट कर दे दूं। इस बात को सुनकर उसकी पत्नि मैत्रेयी बोली—"क्या मैं आपके दिये हुए धन से मुक्ति को प्राप्त कर जाऊंगी?" याज्ञवल्क्य ऋषि बोलेः—

"अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।"

"धन से मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती।" इस उत्तर को सुन कर मैत्रेयी पुनः बोल उठी—"महाराज! जिससे मुझे अमृत की प्राप्ति नहीं हो सकती उसका मैं क्या करूंगी? मुझे तो उस चीज का उपदेश दीजिये जिससे मैं मुक्ति प्राप्त कर सकूं।" मैंत्रेयी की जिज्ञास

को देख कर महर्षि याज्ञवल्क्य जी महाराज उपदेश देते हैं:—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे
दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वंविदितम् ॥

अर्थः—आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए, आत्मा के ज्ञान का श्रवण करना चाहिए, आत्मा के विषय का मनन करना चाहिए और आत्मा पर समाधि लगानी चाहिए। आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और विशेष ज्ञान से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि धन आदि बाह्य पदार्थों से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। हमारे सभी ऋषि, महर्षि, महापुरुष आत्मज्ञान के द्वारा ही सब दुःखों का निराकरण करते आये हैं।

छान्दोग्योपनिषद् में नारद और सनत्कुमार ऋषि की कथा आती है। एक समय नारद महात्मा ने सनत्कुमार ऋषि के पास जाकर कहा कि हे भगवन्! मुझे ब्रह्म विद्या दीजिए। मैंने सारी विद्याएं पढ़लीं हैं परन्तु फिर भी शान्ति नहीं मिली है। मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को जानता हूं। पुराण, व्याकरण, पितृकर्म, गणितशास्त्र, भाग्य शास्त्र, निधि विज्ञान, तर्कशास्त्र, नीति शास्त्र, देवों का ज्ञान, भक्ति शास्त्र, पांचों तत्वों की विद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष शास्त्र, सर्पों का ज्ञान और संगीत विद्या को मैं जानता हूं। मुझे ये सारी विद्याएं आती हैं। इतना होने पर भी मैं आत्मज्ञान से वंचित हूं। आत्मा का ज्ञाता नहीं हूं। इसी कारण मैं शोक सागर से अभी पार नहीं हो सका हूं। मैंने आप जैसे महात्माओं से सुना है कि 'तरति शोकामात्मवित् ।' आत्मा का जानने वाला ही शोक से पार उतरता है। हे प्रभो! मुझे

भी शोक से पार कीजिये।

नारद की प्रार्थना सुन कर ऋषिवर सनत्कुमार ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं और उसे आत्मज्ञानी बनाकर शोकसागर से पार उतारते हैं।

इस दृष्टान्त से यह समझ लेना चाहिए कि सारी विद्या पढ़ लेने पर भी अध्यात्म-ज्ञान के बिना सच्चा सुख नहीं मिल पायेगा।

जो लोग यह कहते हैं कि Eat, drink, dress, see cinema and be merry.

खाओ, पीओ, शृङ्गार करो, सिनेमा देखो और मस्त रहो।"

ऐसे व्यक्तियों को कहना चाहिए—"You can eat, you can drink, you can dress, you can see cinema but you cannot be merry. तुम खा सकते हो, तुम पी सकते हो, तुम सुन्दर सुन्दर कपड़े पहन सकते हो, तुम सिनेमा देख सकते हो, परन्तु आनन्द नहीं ले सकते, क्योंकि तुम्हें यह पता नहीं है कि आनन्द कैसे प्राप्त होता है। यदि-खाने पीने में आनन्द होता तो जो व्यक्ति अधिक खाता है उसे उसे अधिक आनन्द मिलता परन्तु ऐसा नहीं है। अधिक खाने वाले रोगी और दुःखी मिलते हैं। सुख की प्राप्ति का उपाय हमारे ऋषि लिखते हैं:—

समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो निवेशितस्य आत्मनि यत्सुखं भवेत्।

न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते॥ मैत्र्युपनिषद्॥ ६।३४॥

अर्थः—समाधि के द्वारा सब मलों के चकनाचूर हो जाने

पर और आत्मा में रत हो जाने पर जो आनन्द आता है उसको वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह तो स्वयं अन्तःकरण से ग्रहण किया जाता है। उसे जो अनुभव करता है वह ही जानता है।"

महान आनन्द दुनिया के भोगों में नहीं अपितु आत्मा के अन्दर है और उसे विना योग के प्राप्त नहीं किया जा सकता। आनन्द का भण्डार परमात्मा है। प्रभु के प्राप्त किए विना मनुष्य जीवनभर भटकता रहता है। इसको कुछ भी प्राप्त नहीं होता। प्रकृति में आनन्द नहीं मिलता, इस विषय में दृष्टान्त भी सुन लीजिए:-

एक भगत जी एक दिन नदी के किनारे पर गये। नदी के किनारे पर तड़पती हुई एक मछली को देखा। दया आ गई। मछली को उठा लिया। यह सोचा कि यह यहां घास मिट्टी में पड़ी हुई है और इस कारण से इसको कष्ट हो रहा है। इसको घर ले जा कर नीवार के पलंग पर रेशमी कपड़ा डाल कर लिटाऊंगा, तब इसकी तड़प दूर हो जायेगी। भगत जी ने घर आ कर ऐसा ही किया, परन्तु मछली की तड़प दूर न हुई। भगत जी की हैरानी का ठिकाना न रहा। भगत जी ने फिर सोचा कि आज बड़ी गर्मी है इस मछली को भी गर्मी लग रही होगी, पंखा चलाया जाये, मछली की तड़प दूर हो जायेगी। ऐसा ही किया गया। परन्तु पंखा चलने पर भी मछली की तड़प दूर न हो सकी। मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। भगत जी अब सोच में पड़ गये कि अब क्या करूं? भगत जी सोच ही रहे थे कि इतने में एक महाशय जी उधर से आ निकले। महाशय जी ने इस नाटक को देखते ही भगत जी से पूछा—भगत जी! यह क्या तमाशा कर रखा है? भगत जी ने सारी घटना सुना दी महाशय जी बोले—भगत जी! मछली की तड़प पंखों के नीचे

नीवार के पलंगों पर और रेशमी गद्दों पर दूर नहीं हुआ करती। इस को दोबारा नदी के किनारे पर ले चलो और नदी के जल में डाल कर देखो क्या होता है? भगत जी ने वैसा ही किया। ज्यों ही मछली को नदी के जल में डाला गया त्यों ही मछली कलोल-क्रीड़ाएं करनी लगी। इस किनारे से उस किनारे पर, उस किनारे से इस किनारे पर घूमने लगी। आनन्द में मग्न हो गई, क्योंकि मछली को अपना असली आनन्द का स्रोत मिल चुका था।

इसी प्रकार यह जीवात्मा रूपी मछली भी बुरी तरह तड़प रही है। मनुष्य सोचता है इसको नीवारों पर लिटाने से शान्ति मिल जायेगी, परन्तु नहीं मिलती। फिर सोचता है कारों में बैठने से शान्ति मिल जायेगी, परन्तु वहां भी नहीं मिलती। फिर सोचता है पंखों के नीचे शान्ति मिल जायेगी, परन्तु वहां भी नहीं मिलती। फिर सोचता है Air Condition Room (वातानुकूल कक्ष) में जरूर शान्ति मिल जायेगा, वहां भी नहीं मिलती, फिर सोचता है कि बढ़िया-बढिया कपड़े पहनने से टैरालीन, टैरीकोट के बुशर्ट पहनने से शान्ति अवश्य मिल जाएगी परन्तु फिर भी नहीं मिलती। फिर सोचता है कि सिनेमा में जरूर शान्ति मिल जायेगी, परन्तु वहां से भी निराश लौटता है, फिर सोचता है अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थों में अवश्य आनन्द मिलेगा, परन्तु वहां सच्चे आनन्द की उपलब्धि नहीं होती। ज्यों-ज्यों सांसारिक भोगों को भोगता जाता है त्यों-त्यों विषयों की इच्छा और अधिक बलवती होती जाती है और दुःख बढ़ता जाता है। फिर प्रश्न उठता है कि किस प्रकार मछली की तड़प दूर होगी? इसका उत्तर यही है कि जिस दिन जीवात्मा प्रकृति के भोगों से मुख मोड़ कर भगवान के अथाह आनन्द सागर में गोता लगायेगा उसी दिन इसे अपार सुख के दर्शन होंगे।

कठोपनिषद् में लिखा है:—

एको वशी सर्व भूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मास्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

अर्थ:—जो सब प्राणियों के अन्दर विद्यमान है और सारे संसार को जो वश में किए हुए है उस प्रभु को जो अपनी आत्मा में देख लेते हैं, उन योगियों को ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, अन्यों को नहीं।

कठोपनिषद् में ऋषि यमाचार्य जी महाराज आगे लिखते हैं:—

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्म योगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्ष शोकौजहाति ॥

अर्थः—जिसके बड़े कठिनता से दर्शन होते हैं, जो अतीव गुप्त है, जो आत्मा में ओत-प्रोत है, जो हृदय गुफा में निहित है, जो सबका साक्षी है और अनादि है ऐसे देव को योगी योग-साधना के द्वारा जान कर हर्ष शोक से पार उतर जाते हैं।"

योग साधना के दो बहुत बड़े लाभों का वर्णन इस स्थान पर किया गया है। योगी योग साधना के द्वारा हर्ष शोक से पार हो जाता है और ब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है। बड़े-बड़े साधन इकट्ठे करने पर और संसार का समस्त विज्ञान और वैभव संग्रह करने पर भी मनुष्य हर्ष शोक से पार नहीं हो पाता। करोड़ों रुपये खर्च करके भी मनुष्य यह चाहे कि मैं ब्रह्म के दर्शन कर लूं तो तब भी यह असम्भव है। यह करामात तो योगाभ्यास ही में है कि वह मनुष्य को शक्ति प्रदान कर देता है जिससे मनुष्य प्रभु के दर्शन करने में सफल हो जाता है। योग का यह साधारण लाभ नहीं है। इससे बढ़ कर और क्या चाहिए?

श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग के लाभ इस प्रकार लिखे हैं:—

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योग गुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥

अर्थः—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में सूक्ष्म पंच तत्त्वों में पंचभूतात्मक योग सिद्धि के उदय होने पर योगाग्निमय शरीर की प्राप्ति होती है। इसके बाद न रोग, न बुढ़ापा और न मृत्यु आती है अर्थात् योगी रोग, जरा और मृत्यु पर अधिकार कर लेता है।

गीता माता का आदेश है कि योगी सबसे महान होता है:-

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुनः॥६।४६॥

अर्थः—श्री कृष्ण जी महाराज अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं हे अर्जुन ! योगी सब तपस्वियों में बड़ा है, सब ज्ञानियों में बड़ा है और सब कर्मकाण्डियों में बड़ा है। इसलिए तुम भी योगी बन जाओ।"

इससे साफ निष्कर्ष निकलता है कि महान बनने के लिए योग की आवश्यकता है।

योग दर्शन में योगीराज पतञ्जलि जी महाराज योग के अनेक लाभों का वर्णन करते हैं। योग के लाभों का वर्णन योग दर्शन के तृतीय पाद में विस्तार से मिलता है। वैसे तो सारा योग दर्शन योग की व्याख्या मात्र ही है। योग सूत्र में निर्देश किया गया है कि प्रभु का साक्षात्कार योगाभ्यास के द्वारा होता है।

वे लिखते हैं:—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम ॥१॥२॥

अर्थः—योग साधना करने पर योगी की सब के द्रष्टा परमात्मा में स्थित हो जाती है।

योगाभ्यास के दो विशेष लाभों का वर्णन निम्न सूत्र में देखिये:—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धि क्षये ज्ञान दीप्तिराविवेकख्यातेः ॥योग२।२८॥

अर्थ :—योग के प्राणायाम आदि अंगों के अनुष्ठान से शरीर व चित्त की सब अशुद्धि नष्ट होकर ज्ञान की दीप्ति उस समय तक होती चली आती है जब तब प्रकृति-पुरुष विवेक द्वारा आत्म दर्शन नहीं हो जाता।

इस सूत्र में योग साधना से होने वाले दो विशिष्ट लाभों का वर्णन है। सर्वप्रथम योगाङ्गों के अनुष्ठान से समस्त अशुद्धि मल-विक्षेप-आवरणों का सफाया हो जाता है और ज्ञान का पूर्ण विकास हो जाता है। ऋतम्भरा बुद्धि जो सत्य ज्ञान से भरी हुई होती है, योग की निर्विचार समाधि के द्वारा प्राप्त होती है। ज्ञान की दीप्ति के लिए भी योगानुष्ठान करना चाहिए।

योग की कुछ विभूतियां

१—योगी भूत भविष्यत् को जान लेता है।

२—योगी सब प्राणियों के शब्दों को जान लेता है।

३—योगी अपने पहले जन्म की जाति को जान लेता है।

४—योगी दूसरे के चित्त की बातों को जान लेता है।

५—योगी अन्तर्धान हो जाता है।

६—योगी अपनी मृत्यु का पता लगा लेता है।

७—हाथी का बल, व्याघ्र बल तथा सिंह आदि के बल प्राप्त कर लेता है।

८—सूक्ष्म, छिपी हुई और दूर की वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

९—समस्त खगोल का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

१०—देह के सभी आन्तरिक अवयवों एवं मन इन्द्रिय आदि पदार्थों का साक्षात्कार कर लेता है।

११—भूख और प्यास को रोक लेता है।

१२—सिद्ध पुरुषों के दर्शन योगी ध्यान अवस्था में करता है।

१३—दिव्य गन्ध, दिव्य दृष्टि, दिव्य श्रवण, दिव्य स्पर्श, और दिव्य रस प्राप्त हो जाते हैं।

१४—दूसरे के शरीर में प्रवेश कर लेता है।

१५—उदान प्राण पर अधिकार कर लेने से जल, कीचड़ और कांटों पर चल सकता है।

१६—योगी आकाश में उड़ सकता है।

१७—योगी का पृथ्वी आदि पंच भूतों पर अधिकार हो जाता है।

१८—अणिमा आदि आठ सिद्धियां प्राप्त कर लेता है। यथा—सूक्ष्म होना, हल्का होना, भूतों का स्वामी होना आदि।

१९—योगी का दर्शनीय, सुन्दर, बलवान और वज्र के समान शरीर हो जाता है।

२०—प्रकृति पर जीत प्राप्त कर लेता है।

२१—योगी सब भावों का स्वामी और सर्वज्ञ हो जाता हैं।

२२—संसार के सब रत्न योगी को प्राप्त हो जाते हैं।

ये सब सिद्धियां योग के बिना प्राप्त नहीं हो सकती। योगी अनेक सिद्धियां प्राप्त कर लेता है और बहुत आनन्द को प्राप्त कर लेता है।

गौतम ऋषि न्याय दर्शन में लिखते हैं:—

समाधि विशेषाभ्यासात् ॥४।२।३६॥

विशेष समाधि के अभ्यास से तत्वज्ञान उत्पन्न होता है। किसी चीज का तत्वज्ञान विना समाधि के नहीं होता, इसलिए योगाभ्यास की परम आवश्यकता है।

इस प्रकरण में पाठक वृन्द ने देख लिया हैं कि योग साधना का क्या महत्व है। योग के द्वारा समस्त शक्तियां प्राप्त होती हैं, आत्मा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है, ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त होती है और मुक्ति की प्राप्ति होती है। मानव जीवन को सफल करने का उपाय योग साधना ही है। संसार को शान्तिमय और स्वर्ग बनाने के लिए भी योग से बढ़ कर कोई दूसरा साधन नहीं है। इसलिये सब नर-नारियों को योग साधना से लाभान्वित होना चाहिए।

योग क्या है ?

योगी सभी बनना चाहते हैं। बहुत से लोग योगी बने हुए भी हैं और योगीराज कहलाते हैं, परन्तु एक बात दावे के साथ कही जा सकती है कि इनमें से पांच प्रतिशत भी योग किसे कहते हैं, यह यथार्थ रूप से नहीं बतला सकते। आज योग की भी दुकानें चल रहीं हैं और उन दुकानों पर दुकानदार योगी लोग बैठे हुए अपना-अपना सौदा बेच रहे हैं। चेले-चेलियां खूब मूंडी जा रही हैं, पैसे खूब इकट्ठे हो रहे हैं, कोठियां बन रही हैं, कारें खड़ी हैं, सब राजसी ठाठ हैं। जितने अधिक राजसी ठाठ हैं उतने ही बड़े योगी हैं। सब गुरु बने बैठे हैं। योग का अ, आ भी चाहे न आता हो, परन्तु फिर भी पूरे सिद्ध हैं। ये स्वयं भटक रहे हैं और दूसरों को भटका रहे हैं। इसलिए योग के जिज्ञासुओं को योग मार्ग का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके योग मार्ग में आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

योग के नाम पर अनेक प्रणालियां और पद्धतियां प्रचलित हो गई हैं जिनमें कुछ पाश्चात्य और कुछ भारतीय हैं। पाश्चात्य पद्धतियों में मुख्य हैं :—(१) दृष्टि बन्ध (Sightism) (२) अन्तर-रावेश (Spritualism) (३) सम्मोहन (Mesmerism) (४) संवशीकरण (Hypnotism) हैं।

भारतीय पंद्धियां ये हैं:—

१- भक्ति योग २- शक्ति योग ३- हठ योग ४- राज योग आदि।

दृष्टि-बन्ध आदि पाश्चात्य पद्धतियां तो न योग हैं और न योग की शाखाएं। योग मन की शान्त स्थिति का नाम है और ये हैं मन की भ्रान्त स्थिति के प्रयोग। पात्र का मन किसी भी क्रिया या रीति से भ्रान्त कर देने पर उक्त प्रयोग होते हैं। उदाहरण के लिए दृष्टि-बन्ध में किसी छोटे बालक के अंगूठे के नाखून पर स्याही या तेल लगाकर कहें कि इस पर लगातार टकटकी लगा कर देखते रहो। कुछ देर बाद तुम्हें इसमें एक वाटिका दिखाई देगी। तब आप कहें देखो इसके अन्दर कोई मैदान है। लड़का कहेगा, हां, देख रहा हूं। फिर इसको साफ करने के लिए कोई भंगी आ रहा है। लड़का कहेगा, हां, आ गया। फिर कहो दरी बिछाने वाला आ गया है। लड़का कहेगा, हां आ गया है। इस प्रकार ये मन को भ्रमित करके सारे प्रयोग किये जा सकते हैं।

भारतीय पद्धतियों में साम्प्रदायिक लोग अपने इष्ट देवता की भक्ति करने को भक्ति योग कहते हैं। शक्ति, दुर्गा, काली आदि देवताओं के आवेश को अपने अन्दर भरने को शक्ति योग कहते हैं। हठ से बलात मन को मारने के लिए नाड़ी आदि के अभ्यास का नाम हठ योग है। कुछ लोग मूर्छित होने को ही योग कहते हैं। ये लोग अपने शिष्यों को कई दिन तक निराहार रखते हैं और जुलाबों के द्वारा पेट खाली करवा देते हैं। इसके बाद लगातर एकटक अपनी ओर देखने का आदेश देते हैं। शक्ति क्षीणता के कारण जो मूर्छा आती है उसे ही ये योग कहते हैं। कुछ लोग भांग, चरस आदि नशे की वस्तुओं का सेवन करके मूढ़ावस्था का नाम समाधि धरते हैं।

कुछ लोग जमीन में दबने को ही समाधि कहते हैं, कुछ हाथ से आंखों को दबा कर प्रकाश देखने को साधना कहते हैं और कुछ कानों को दबा कर अनहतनाद सुनने को योग कहते हैं। परन्तु ये सारी ही चीजें योग के विरुद्ध हैं। योग के आठ अङ्गों को जीवन में कौन घटाये ? आजकल योग के गुरू अपने शिष्यों को उपदेश देते हैं कि कुछ खाओ, कुछ पीयो, कैसे ही आचरण करो इसका योग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अण्डे मांस खाने वाला, शराब पीने वाला, दो-दो, तीन-तीन स्त्रियां रखने वाला भी योगी हो सकता है। परन्तु ऋषियों की दृष्टि में यह योग नहीं है। योग के आठ अङ्गों को जानना होगा।

योग के आठ अङ्ग

१-यम २-नियम ३-आसन ४-प्राणायाम ५-प्रत्याहार ६-धारणा ७-ध्यान ८-समाधि। ये योग के आठ अंग हैं।

इनमें यम पांच प्रकार का है।

१—अहिंसा २—सत्य ३—अस्तेय ४—ब्रह्मचर्य और ५—अपरिग्रह।

नियम भी पांच प्रकार के होते हैं।

१–शौच २–सन्तोष ३–तप ४–स्वाध्याय ५–ईश्वर प्रणिधान।

ये यम और नियम योग साधन के मूल हैं। इस श्रेणी के उत्तीर्ण किए बिना आगे जाना मना है। जो इन प्रथम श्रेणियों को पार किये बिना ही आगे बढ़ना चाहता है वह योग मार्ग से अनभिज्ञ

है। वह कदापि आगे की कक्षाओं में पास न हो सकेगा। महर्षि योगीराज पतञ्जलि जी महाराज ने इन यम नियमों को सार्वभौम महाव्रत लिखा है। वास्तव में ये महाव्रत ही हैं और सार्वभौम हैं- सारी दुनिया के लिए समान हैं। इन महाव्रतों को जो धारणा कर लेता है वह महाव्रती है। ऐसा यह महाव्रती साधक निश्चित रूप से योग में आगे बढ़ जाता है और योग में सफलता प्राप्त कर लेता है। ये यम नियम ही असली व्रत हैं। संसार के लोग व्रतों को भी नहीं जानते। भूखे मरने का नाम लोगों ने व्रत रख रखा है। कोई एकादशी को भूखा मर रहा है, कोई पूर्णमासी को और कोई मंगलवार को। एकादशी का व्रत क्या होता है, ये लोग जानते ही नहीं। दस इन्द्रियों और मन को वश में रखना एकादशी व्रत है, समस्त इन्द्रियों को वश में करना पूर्णमासी का व्रत है। अहिंसा आदि व्रतों का करना की मंगलवार का व्रत है क्योंकि इन महाव्रतों से साधक का मंगल हो जाता है। आज के लोग तो व्रतों की ओर में माल मारते हैं। थोड़ी देर के लिए उपवास करके कोई पेड़े खाता है, कोई सेब मंगाता है, कोई दूध और कोई फल उड़ाता है।

एक बुढ़िया की कहानी है। एक बार बुढ़िया ने व्रत किया। बुढ़िया का लड़का आकर मां को बोला, "मां! सुना है आज आप व्रती हैं। मां ने कहा, 'हां बेटा। व्रती तो हूं।" बेटे ने कहा "मां! लो मैं एक सेर दूध लाया हूं, इसे पी लो। इससे व्रत में कोई विघ्न नहीं होगा।" मां ने कहा "ठीक है बेटा' दूध से व्रत नहीं टूटता, लाओ पी लेती हूं।" एक सेर दूध बुढ़िया मैय्या पी गई। फिर दूसरा लड़का आया और कहने लगा कि मां सुना है आप व्रती हो। मैं ये पाव भर पेड़े लाया हूं। इन्हें खा लो। इनसे व्रत नहीं टूटेगा। मां ने कहा-"ठीक है बेटा, लाओ इन्हें खा लेती हूं।" मां पावभर पेड़े भी

खा गई। फिर तीसरा लड़का आया और बोला "मां ! सुना है आप व्रती हैं।" मां बोली "हां बेटा ! मैं व्रती हूं।" बेटा बोला–"अच्छा मां, मैं ये एक दर्जन केले लाया हूं, इन्हें खा लो। फल खाने से तो व्रत टूटता ही नहीं।" मां ने वे भी खा लिए। अब चौथे लड़के को पता चला कि मेरी मां आज व्रती है और इतना सामान खा गई है। यह सोच कर वह घर आया और घर के सामने गली में खड़ा होकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा और कहने लगा कि सुनो गांव के लोगो ! आज मेरी माँ व्रती है और इतना सामान खा गई है। अब कोई अपने बच्चों को इधर न आने दे। नहीं तो खैर उन बच्चों की भी नहीं है।

अब मैं पूछना चाहता हूं कि बतलाओ इस व्रत से क्या लाभ है ? योगीराज पतञ्जली जी महाराज ने असली व्रतों का वर्णन किया है। जो इन व्रतों को जीवन में धारण कर लेगा उसका कल्याण हो जायेगा।

अहिंसा महाव्रत

यह महाव्रत सब यम-नियमों में मुख्य है। योग साधना का तो यह प्राण ही समझना चाहिये। लोक में सुख प्राप्त करने के लिए और संसार को स्वर्ग बनाने के लिए भी अहिंसा परम साधन है। किसी भी व्यक्ति को अपना बनाने के लिए यह अचूक अस्त्र है।

सब प्रकार से सब काल में सब प्राणियों से वैर त्याग देना अहिंसा है। इस महाव्रत का सीधा अर्थ मन, वचन, कर्म से किसी भी प्राणि से वैरभाव न रखना और आत्मवत् समझना है। परन्तु इसका यह भाव कदापि नहीं है कि चोर को चोरी करने पर दण्ड न दिया जाये, शत्रु के आक्रमण करने पर उसके आगे गर्दन झुका दी

जाये, किसी उद्दण्ड विद्यार्थी की उद्दण्डता पर उसे दण्ड न दिया जाये, बैल भैंसे को चलाने के लिए उसे कुछ न कहा जाए, सर्प काटने आये तो उसके आगे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लग जायें, मच्छर काटें तो उनकी छूट कर दी जाये, कपड़े या बालों में जूएं हो जायें तो उन्हें निकाल बाहर न किया जाये, जीवों के मारने के भय से मुख पर पट्टी बांधे जाये, या जल-पान न किया जाये। इसे हम अहिंसा नहीं कह सकते। हानिकारक वस्तुओं से अपनी रक्षा करना, किसी के उत्थान के लिए हित-बुद्धि से दण्ड देना भी अहिंसा ही है।

अहिंसा के विषय में महाभारत के अनुशासन पर्व के ११६ अ० में लिखा है :—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥

अर्थ :—अहिंसा परम तप है, परम दम है, परम दान और परम धर्म है।

अहिंसा कोई साधारण चीज नहीं है। जो योगी मन, वचन, कर्म से अहिंसा का पुजारी हो जाता है उसे बड़ा भारी फल मिलता है। योगीराज पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं :—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः॥योग २।३५॥

अहिंसा सिद्ध होने पर संसार का कोई प्राणि योगी से वैर नहीं करता। हिंसक से हिंसक प्राणि वैरभाव छोड़ देते है और मित्रवत आचरण करते हैं।"

अहिंसा के व्रत से पूर्व हम सब प्राणियों से भय खाते रहते हैं और दूसरे प्राणि हमसे भय खाते रहते हैं। अनेक साधन करने

पर भी आदमी सदा भयाकुल रहता है। कहीं सर्प का भय, कहीं सिंह का भय, कहीं चोर-डाकुओं का भय और कहीं मच्छरों का भय बना ही रहता है। बड़े-बड़े साधन-सम्पन्न लोग, कोठियों में रहने वाले, राजा-महाराजा भी सदा भयभीत रहते हैं। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि एक साधक सर्प व्याघ्रों से परिपूर्ण जंगल में रहता हुआ भी निर्भय रहता है। बड़े-बड़े डाकुओं का भी उसे भय नहीं है। इस का रहस्य क्या है संसार के लोग नहीं जानते। यही तो वह गुप्त विद्या योग है। वास्तव में योग के प्रारम्भ करते ही योगी को ऐसी अद्भुत चीजें मिलनी प्रारम्भ हो जाती हैं जिनको देखकर दुनिया वाले चकित हो जाते हैं। इसलिए इस बात को पल्ले की गांठ पर बांध कर रखो कि यदि आप चाहते हैं कि हमें कोई पीड़ा न दे तो आप भी किसी को पीड़ा न दें। यदि आप चाहते हैं कि हमारे से कोई द्वेष न करे तो आप भी किसी से द्वेष न करें। यदि आप मरने से बचना चाहते हैं तो आप भी किसी को न मारें। अपनी आत्मा के समान ही दूसरे की आत्मा को समझें। जैसा मधुर व्यवहार आप दूसरों से अपने लिए कराना चाहते हैं वैसा ही व्यवहार आप दूसरों के साथ भी करें। लिखा भी है :—

Do with others as you wish to be done by others.

दूसरों के साथ वह कार्य करो जो आप दूसरों से अपने लिए चाहते हैं। यदि संसार के लोग इस अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लें तो यह संसार स्वर्ग-स्थली बन सकता है। परन्तु आज इस नियम के विरुद्ध चलने से विश्व नरकधाम बना हुआ है। लोग दूसरों का गला काट कर स्वयं सुखी रहना चाहते हैं। भाई का भाई से, बेटे का बाप के साथ प्यार नहीं है। दूसरों का तो कहना क्या। आज के संसार को अहिंसा के उपदेश की महती आवश्यकता है। इसके बिना

आज राष्ट्रों के अन्दर हिंसा की अग्नि भड़की हुई है। एक बड़ा राष्ट्र छोटे राष्ट्र को निगल जाना चाहता है। किसी को भी एक-दूसरे का विश्वास नहीं रह गया है। सभी राष्ट्र एक-दूसरे से भयभीत हो रहे हैं और एक दूसरे से बढ़चढ़ कर शस्त्र तैयार कर रहे हैं। जो धन राष्ट्र वासियों के अन्न-वस्त्र आदि आवश्यक विकास के कार्यों में व्यय होना चाहिए था आज वही धनराशि अस्त्र शस्त्रों में पानी की तरह बहाई जा रही है। लोग भूखे मर रहे हैं परन्तु शस्त्रों के आगार भरे जा रहे हैं। विश्व के ऊपर आज हर क्षण विनाश के बादल मंडराये हुए हैं। कौन जानता है किस दिन यह भंयकर आग फूट पड़े और लोग इस विनाश की आग में जल उठें। इसलिए केवल योगियों को ही नहीं, अपितु राष्ट्रों के लिए भी अहिंसा आवश्यक है। यदि सभी राष्ट्र अहिंसा के व्रत को धारण कर लें तो इन अस्त्र-शस्त्रों की इतनी आवश्यकता न रहे और राष्ट्रों का धन भी राष्ट्रों के विकास में लगा कर उन्नति का कारण बन जाय। यदि सभी लोग अहिंसा व्रत का अनुष्ठान करने लग जायें तो किसी को किसी का भय न रहे। आप सर्वथा निर्भय हो जायेंगे। दूसरे प्राणि भी आप से निर्भय हो जायेंगे। सिंह आदि हिंसक प्राणि भी आप के पास कान हिलाते हुए आ बैठेंगे और आप उनके ऊपर हाथ फेर कर आनन्दित हुआ करेंगे। जंगल के हिरन आप के शरीर से अपनी खुजली मिटाया करेंगे, सर्प आप के गले की माला बन कर सुशोभायमान हुआ करेंगे, शत्रु मित्र बन जायेंगे। सारा संसार तुम्हारे पास रहना पसन्द करेगा। तुम्हारे में इतना आकर्षण हो जायेगा कि सारी दुनिया बिना बुलाये तुम्हारे चरणों में आ विराजेगी। वास्तव में ऐसे योगी की छत्रछाया में बैठ कर सच्ची शान्ति मिलती है। अहिंसा का फल अतीव मधुर है, बड़ा अनूठा है, शान्ति देने वाला है, शत्रु को मित्र और हिंसक को अहिंसक बना देने वाला है। इतिहास इस बात का साक्षी है :—

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज के जीवन की एक घटना सुनाता हूं। स्वामी जी गंगा में स्नान कर रहे थे। एक मगरमच्छ उधर से आ निकला। स्वामी जी फिर भी मस्त पड़े रहे। लोग चिल्लाये महाराज! मगरमच्छ आ रहा है, आप शीघ्र ही जल से बाहर आओ। स्वामी जी यह सब कुछ सुन कर तनिक भी न घबराये और वहीं लेटे रहे। लोगों ने फिर शोर मचाया। लोगों के बार-बार चिल्लाने पर बोले कि जब हम इसे कुछ नहीं कहते तो यह भी हमें क्यों कुछ कहेगा। स्वामी जी भी वहीं लेटे रहे और मगरमच्छ भी वहीं क्रीड़ा करता रहा। इसे ही अहिंसा का प्रभाव कहते हैं।

महात्मा बुद्ध के जीवन की भी एक घटना का वर्णन कर देता हूं। एक बार महात्मा बुद्ध मगध नामक एक नगरी के किनारे पर डेरा डाले बैठे हुए थे। नगरी के लोग महात्मा जी के पास आये जो बड़े दुःखी थे। महात्मा जी ने उनके दुःख का कारण पूछा। लोगों ने कहा-महाराज! यहां जंगल में एक भयंकर अंगूलीमाल डाकू आया हुआ है। उसके साथ उसकी माता भी है। वह प्रतिदिन बड़ी निर्दयता के साथ नर-संहार करता है और जिस को मारता है उसकी अंगुली काट लेता है और अंगुलियों की माला गले में पहनता है। इस बात को सुन कर महात्मा बुद्ध घबराये नहीं और न ही उस स्थान को छोड़कर भागने की तैयारी की। बड़े धैर्य और निर्भीकता के साथ बुद्ध भगवान बोले—"कोई चिन्ता मत करो। कल प्रातः मैं स्वयं अपनी बलि अंगुलीमाल को चढ़ाऊंगा। मेरी बलि से वह सन्तुष्ट हो जायेगा, फिर वह किसी को नहीं मारेगा। इस निर्णय को सुनकर लोग और अधिक चिन्तातुर हो गये। महात्मा बुद्ध से आग्रह करने लगे कि हम आपको ऐसा नहीं करने देंगे। परन्तु बुद्ध टस से मस नहीं हुए। अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे। प्रातः ही महात्मा बुद्ध वन की ओर चल पड़े। जिस

समय वे वन में जा रहे थे, अंगुलीमाल डाकू की मां मार्ग में मिली और इनको मारने के लिए झपटी, परन्तु ज्यों ही मारने के लिए निकट आई तो एकदम बदल गई। मारने की बजाय रक्षा के लिए चिन्तातुर हो गई। अंगुलीमाल की मां बोली—महाराज! उधर आगे वन में मत जाओ। वन में अंगुलीमाल डाकू रहता है, वह तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ेगा। परन्तु फिर भी महात्मा बुद्ध नहीं माने। आगे ही बढ़ते गये। जिस समय बीहड़ जंगल आ गया तो अंगुलीमाल डाकू सामने नजर आया। अंगुलीमाल एकदम चिल्लाया "कौन है? मरने के लिए स्वयं ही चला आ रहा है, अब बच न सकेगा।" परन्तु होता क्या है। जब अंगुलीमाल महात्मा बुद्ध के सामने आता है तो हाथ से तलवार नहीं चलती। हतप्रभ हो जाता है। सोचता है वह डाकू, क्या हो गया मुझे? अहिंसा के प्रभाव से जीवन का कांटा बदल चुका था। अब अंगुलीमाल डाकू डाकू नहीं रहा। महात्मा के चरणों में लोट-पोट हो गया और महात्मा बुद्ध का शिष्य बन गया। अंगुलीमाल ने बौद्ध भिक्षु बन कर लंका में जाकर बौद्ध धर्म की अहिंसा का प्रचार किया।

इसे कहते हैं अहिंसा का फल!

ऋषियों के आश्रमों में सिंह, सर्प, बिच्छु, भेड़िया सभी हिंसक प्राणि अपनी हिंसा वृत्ति को छोड़ कर अहिंसक हो जाते हैं। ऋषियों की तपस्या के कारण आश्रमों के वायुमण्डल के प्रमाणु ही बदल जाते हैं। आस-पास की भूमि तपोभूमि बन जाती है चोर डाकू भी जब इस पावन आश्रम भूमि के निकट से निकलते हैं तो कुछ समय के लिए उनकी भावनाएं परिवर्तित हो जाती हैं और वे आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि हमें क्या जादू-सा हो गया। चंचल-चित्त व्यक्तियों चंचल वृत्तियां स्वयं शान्त हो जाती हैं और वे ये कहते हुए सुना

देते हैं कि यहां आश्रम में आकर पता नहीं हमें क्या हो जाता है। घर पर बहुत परिश्रम करने पर भी ध्यान में मन नहीं लगता, परन्तु यहां आकर समाधि स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। यह सब प्रभाव आश्रमवासी महात्माओं-तपस्वियों का ही होता है। जिस समय मैं वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर में अध्ययन व साधना करता था तो वहां पर ऐसी अनेक बार घटनायें घटती रहती थी। हमारे पूज्य गुरुदेव मुनि व श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ऋषि कोटि के महापुरुष थे। ये वीतराग महात्मा अहिंसा की मूर्ति और योगाभ्यास में शिरोमणि थे। इनकी गहन तपस्या के कारण आश्रम का वातावरण अतीव पावन बन गया था। यहाँ दूर-दूर से जिज्ञासु आते थे और आते ही ध्यान अवस्थित हो जाते थे। पूज्यवर स्वामी जी के चरणों में बैठ कर किसी का दिल उठने को नहीं करता था। उनके सत्सग का सुख अपूर्व था। वे दिन धन्य थे। जब हम सब ब्रह्मचारी स्वामीजी महाराज को चहूं ओर से मंडलाकार में घेर कर बैठते थे तो तब कपिल, कणाद, पतञ्जलि, गोतम, जैमिनि आदि ऋषि मुनियों के समय की स्मृति हो उठती थी। गुरुराज ब्रह्मनिष्ट योगीवर का कुछ ऐसा प्रभाव था कि चोर डाकू भी आश्रम के पास से निकलते हुए अपनी भावनाओं में परिवर्तन देखते थे। गांव के साधारण लोग भी इस बात की चर्चा करते थे। स्वामी जी की अहिंसा भी पूरी सिद्ध थी। एक दिन की घटना है कि सायंकाल जिस चारपाई पर स्वामी जी शयन के लिए लेटे उस पर एक बड़ा विषधर सर्प भी साथ ही लेट गया। जब प्रातःकाल तीन बजे स्वामी जी महाराज उठे तो सर्प भी उठकर चल दिया। ऐसा प्रायः कई बार होता रहता था। स्वामी जी कभी किसी सर्पादि जीव-जन्तु को मारने न देते थे। उनके जीवन में हमने अहिंसा की पूरी सिद्धि देखी। वे संसार में सबसे प्यार करते थे और उनसे भी सब श्रद्धा रखते थे।

इस प्रकार अनेक महात्मा योगी देखे जा सकते हैं। अहिंसा सिद्ध होने पर दूसरे यम-नियम भी सिद्ध हो जाते हैं। यह अहिंसा योगियों के बड़े काम की वस्तु है। इस अजेय अस्त्र से सब हिंसादि वितर्कों को समाप्त करके योग मार्ग में सफलता प्राप्त करते हैं। अहिंसा व्रत से साधक की चित्त भूमि सात्विक हो कर योग समाधि के लिए उपयुक्त हो जाती है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जबतक साधक अहिंसा आदि यमों से अपनी चित्त भूमि को सात्विक निर्मल नहीं कर लेता तबतक योग समाधि उसके लिए सर्वथा असम्भव है। इसीलिए महापुरुषों ने कहा है कि :—

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िये जबतक घट में प्राण ॥

सत्य महाव्रत

दूसरा महाव्रत सत्य है। योग मार्ग में इसका विशेष स्थान है। सत्य को धारण किये बिना योग का मार्ग विस्तृत नहीं हो सकता। मुण्डकोपनिषद् में सत्य की महिमा इस प्रकार वर्णन की है :—

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ।६॥

अर्थ :—"सत्य की ही सर्वदा जय हुआ करती है, झूठ की नहीं। देवों का मुक्ति का मार्ग सत्य से ही विस्तृत हुआ है। सत्य से ही धर्म का विस्तार हुआ है। जिस मार्ग से पूर्ण काम ऋषि लोग चलते हैं, वह सत्य है। जहां वे पहुंचते हैं वह सत्य का परम निधि है।"

सत्य का स्वरूप है— जैसा मन में वैसा वाणी में और जैसा वाणी में वैसा ही कर्म में होना चाहिए। जो वाणी दूसरे को ठगने के लिए और भ्रमित करने के लिए प्रयुक्त होती है वह सत्य नहीं कहलाती। सत्य बोलने का अर्थ यह भी नहीं है कि किसी को ऐसा कठोर वचन बोला जाये जो हो तो सत्य परन्तु उसको सुन कर श्रोता क्रोधित हो उठे। जैसे काने को काना कहना उसे नाराज करना है। शास्त्रकारों ने इस विषय में मर्यादा बांधी है। मनु महाराज लिखते हैं :—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

अर्थः—"सत्य बोले, प्रिय बोले और जो अप्रिय सत्य हो वह न बोले, असत्य प्रिय न बोले। सत्य प्रिय बोले यही सनातन धर्म है।"

सत्य और मधुर वचन बोलने के बड़े सुखदायी परिणाम होते हैं। जो योगी सत्य का मन वचन कर्म से पक्का पुजारी हो जाता है, उसके अन्दर आश्चर्यकारक गुण आ जाते हैं। उसकी चमत्कारी शक्ति का वर्णन योगीराज पतञ्जलि जी महाराज करते हैं:—

"सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥२।३६॥

'सत्य की प्रतिष्ठा होने पर सब कार्य फलदायक हो जाते हैं, सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं।"

इस सूत्र का भाष्य करते हुए वेद व्यास जी महाराज लिखते हैं कि :—

"धार्मिको भूया इति भवति स्वर्गं प्राप्नुहीति प्राप्नोति, अमोघाऽस्य

वाग्भवति।" ऐसे साधक की वाणी यथार्थ हो जाती है, जिसको जो कह देता है वही पूरा हो जाता है। इसका कहा हुआ व्यर्थ नहीं जाता। "धार्मिक हो जा" इतना कहने पर धार्मिक हो जाता है और "स्वर्ग को प्राप्त कर" इतना कहने पर स्वर्ग को प्राप्त होजाता है।

मनुष्य सोचता है कि असत्य बोलने से ही मेरे सारे कार्य पूरे होते हैं। मुकदमें में मैं बिना असत्य बोले नहीं जीत सकूंगा, व्यापार में मैं बिना असत्य बोले पैसा न कमा सकूंगा, झूठे व्यवहार बिना कोठियां नहीं बना सकूंगा, कारें नहीं ले सकूंगा, ऊपर की आय बिना खर्चे का पूरा नहीं पटेगा, बहुत से लोग तो कह भी देते हैं कि नेक कमाई से तो रोटी-रोटी मिल सकती है—ये कोठो बगले, सोफे सैट तो ऊपर की गोल-माल से ही मिल सकते हैं। वक्ता कहता है कि असत्य की पुट के बिना श्रोताओं पर प्रभाव ही नहीं पड़ता. परन्तु मनुष्य का यह भ्रममात्र है। असत्य आचरण से काम बनते नहीं, बिगड़ते हैं। चले-चलाये व्यापार ठप्प हो जाते हैं, बने-बनाये महल ढह जाते हैं, बने बनाये परिवार समाप्त हो जाते हैं, जमा-जमाया प्रभाव दो मिनट में साफ हो जाता है। उस समय आदमी माथे पर हाथ धर कर रोता है, पश्चाताप करता है। कई भाई शंका करते रहते हैं कि अनेक लोग झूठ से, अधर्म से खूब बढ़ रहे हैं, उनके कार्य नष्ट क्यों नहीं होते?

इसका उत्तर यही है कि पापी प्रारम्भ में बढ़ता है और कुछ समय बाद मूल सहित नष्ट हो जाता है। भगवान उसे ऊपर चढ़ा कर धड़ाम से जोर से पटकता है जिससे वह बच ही न सके। दूसरे लोग भी देखें कि पापी कैसे नष्ट होता है। जो जितना अधिक पाप करता है उतना ही अधिक जोर से गिरता है और अधिक चोट लगती है। जैसे एक मंजिल पर से गिरने से कम चोट लगती है और दस मंजिल

ऊपर में गिरने से चकनाचूर हो जाता है। जो लोग किसी कार्य को प्रारम्भ करते हैं और कार्य में सफलता नहीं मिलती, यह उनके असत्य आचरण का ही फल मिल रहा है। जिनके कार्य बने-बनाये बिगड़ रहे हैं उन्हें भी अपने अधर्म का ही फल मिल रहा है। ऐसा दृढ़ विश्वास कर लीजिए। मनुष्य गाड़ी में बैठने के लिये स्टेशन पर पहुँचा, परन्तु स्टेशन पर पहुँचने से पहले ही गाड़ी छूट चुकी थी, निराश घर लौट आया; श्रेणी में विद्यार्थी पूरे वर्ष पढ़ा, चार हजार रुपये खर्च किये, परन्तु परिणाम निकला तो फेल; कृषक ने खेत में परिश्रम तो किया परन्तु फसल न हुई; डाक्टर ने दवाई तो दी, परन्तु आराम न हुआ; पढ़ने वाले ने डिग्री तो ले ली परन्तु सर्विस न मिली; युवक का विवाह तो हो गया, परन्तु सन्तान न हुई; किसी कार्य को प्रारम्भ किया परन्तु मिली असफलता; दुकान खोली तो चली नहीं; किसी से रुपया मांगा तो मिला नहीं; हजारों सौगन्धें खाई परन्तु किसी को विश्वास नहीं होता; मित्र बनाना चाहता है, परन्तु बनते ही नहीं; यश चाहता है, मिलता नहीं; उपदेश दिया, परन्तु प्रभाव ही नहीं; आश्रम खोला तो, चला ही नहीं; ध्यान लगाता है, लगता ही नहीं; इत्यादि जितनी ये असफलताएं हैं ये सब असत्य का कटु फल हैं।

शास्त्रकार भी इसकी पुष्टि करते हैं :—

समूल एष शुष्येत् स लोक द्वय फलं विना।
अनृतं यो वदेत्क्वापि पुरुषः परिमोहितः ॥१॥

यदि किसी भी प्रकार मोहादि वश होकर पुरुष झूठ बोलता है तो उसके सभी कार्यों के फल मूलसहित सूख जाते हैं। असत्य भाषण से उसके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं।

ना सत्यवादिनः सख्यं न पुण्यं न यशोभुवि।
दृश्यते नापि कल्याणं कालकूटमिवाश्नतः ॥२॥

जिस प्रकार से विष खाने से कल्याण नहीं हो सकता, उसी प्रकार से असत्य बोलने से न मित्रता, न पुण्य, न यश इस भूमि पर प्राप्त होता है।

मानाद्वा यदि वा लोभात्क्रोधाद्वा यदि वा भयात्।
यो न्यायादन्यथा ब्रूते स नरः पापमाप्नुयात्॥

जो मनुष्य मान से, लोभ से, क्रोध से या भय के कारण से असत्य बोलता है वह पाप को प्राप्त होता है।

असत्य का हाल यह है और सत्य का पक्ष कितना अद्भुत है। सत्य के आचरण से वाणी अमोघ हो जाती है। अमोघ का अर्थ व्यर्थ न जाने वाली होता है। जिस कार्य को योगी हाथ लगा देता है वही पार हो जाता है; जिसको जो वाक्य कह देता है, वह पूरा हो जाता है; जिसे जो वरदान दे देता है, सार्थक हो जाता है; जिस पर कृपा हो गई, निहाल हो जाता है; पापी धर्मात्मा हो जाते हैं, दुःखी सुखी हो जाता है, रोगी निरोगी हो जाते हैं, पतित पावन हो जाते हैं और निर्धन सधन हो जाते हैं। इसे कहते हैं सत्य का चमत्कार। मान गये अब तो। अब भी न मानोगे तो तुम्हारे भाग्य फूट गये। हम क्या करें ?

परन्तु नहीं, यदि अभी कुछ कसर बाकी है तो उसे भी पूरा करेंगे। हम आपको सन्तुष्ट करके ही छोड़ेंगे। आगे चलो !

वाणी को ओजयुक्त करने के लिए सत्य और मधुरता इन दो साधनों का वर्णन शास्त्रकारों ने किया है। जब कोई साधक इन दो साधनों से अपनी वाणी को पावन कर लेता है तो कमाल हो कर रह जाता है। वह छोटे-मोटे कामों में ही सिद्धि प्राप्त नहीं करता, अपितु

वह विश्वविजयी हो जाता है। तोप, तलवार, एटम बम, हाइड्रोजन बम, टैंक और राकेटों के बलबूते पर संसार नहीं जीता जा सकता है, यह संसार सत्य और मधुर वाणी की अमोघ शक्ति से जीता जाता है। बुद्ध. शंकर, दयानन्द, विवेकानन्द, गांधी प्रभृति महापुरुषों ने अपनी सत्यवाणी की शक्ति से संसार को हिला कर रख दिया।

जगद्गुरु शंकराचार्य जी लिखते हैं :—

यदिच्छसि वशिकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवाद शस्येभ्यो गां चरन्ति वारय॥

यदि तुम केवल एक ही कर्म से संसार को जीतना चाहते हो तो दूसरों की निन्दारूपी खेत से अपनी वाणी रूपी गौ को रोक लो। अर्थात् अपनी वाणी को वश में रखो और सदा मधुर बोलो।

महात्मा गांधी जी ने कहा है :—

If you want to control the whole world, first control yourself. In controling yourself first control your tongue.

"यदि तुम संसार को जीतना चाहते हो तो पहले अपने ऊपर अधिकार करो, और यदि तुम अपने ऊपर अधिकार करना चाहते हो तो सबसे पहले अपनी वाणी के ऊपर अधिकार करो।

वाणी पर अधिकार करने से मनुष्य संसार को जीत लेता है।

तुलसीदास जी लिखते हैं :—

तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण यह मन्त्र है तज दे वचन कठोर॥

वेद में भी भगवान से वाणी की मधुरता की याचना की गई है :—

जिह्वाग्रे मधु मे जिह्वा मूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो ममचित्तमुपायसि ।। अथर्व वे० १।३४।२।।

"मेरी जिह्वा के अग्रभाग में मधु हो, जिह्वा के मूल में मधु हो, मेरे प्रत्येक कर्म में मधु रहे और चित्त में मधु व्याप्त हो जाये ।"

इस स्थान पर बहुत काम की बात कही है। हमारी जिह्वा और हृदय मधु की भांति हो जायें। वाणी को मधुमय बनाने के लिए वेद संकेत कर रहा है। मधु के समान बनने में कुछ रहस्य है। मधु चिरकाल तक विकार को प्राप्त नहीं होता। इसलिए हमें विकार-रहित वाणी बोलनी चाहिए। मधु मीठा होता है, अतः मीठी वाणी बोलनी चाहिए। मधु थोड़ा होता है और पुष्पों का सार होता है। आप देखते हैं कि गुड़-शक्कर-खाण्ड के भण्डार भरे पड़े रहते हैं परन्तु शहद के कोठे कहीं नहीं भरे मिलते और यह भी देखते हैं कि मधु मक्खियां चिरकाल तक पुष्पों का सार चुनती रहती हैं और बड़े परिश्रम से, बड़ी सावधानी से मधु का संग्रह कर पाती हैं। इसीलिए वाणी भी मधु के सदृश सारयुक्त परिमित बोलनी चाहिये। जो थोड़ा बोलता है उसका प्रभाव भी अधिक होता है। जो अधिक बोलते हैं उनके बारे में लोग कहना प्रारम्भ कर देते हैं कि इसे तो बकवास करने की आदत पड़ गई है। सरदार पटेल कभी-कभी बोलता था तो लोग कहते थे कि अब कुछ अवश्य होगा, परन्तु पं० जवाहरलाल नेहरु के रोज गरजने पर भी लोगों को कोई विश्वास नहीं होता था।

यहां पर एक बात और भी बड़ी गम्भीर कही गई है। वह यह

है कि हमारी जिह्वा के अग्र भाग पर ही मधुरता न हो, जिह्वा के मूल में और अन्दर भी मधुरता है। जिह्वा के अग्रभाग पर तो व्यापारियों और दुकानदारों की भी मधुरता होती है परन्तु अन्दर ठगी भरी होती है। इससे वे लोग अच्छे हैं जो ऊपर से कठोर और अन्दर से निर्मल सच्चे हैं। परन्तु वेद कहता है जो अन्दर से मधुर और ऊपर से कठोर हैं, वे भी अच्छे नहीं हैं। अच्छे तो वही हैं जो अन्दर-बाहर दोनों ही तरह मधुतुल्य हैं। कुछ मनुष्य अन्दर से अच्छे होते हुए भी बाह्य व्यवहार की शून्यता से असभ्य लगते हैं। श्री प्रकाशवीर जी शास्त्रि सुनाया करते हैं कि मैंने एक बार जिला रोहतक के एक ग्राम में रात्रि को भाषण दिया। अगले दिन एक साधारण-सा कृषक जो मेरा सम्मान करना चाहता था, मुझे दूध पिलाने की इच्छा से मुझे बोला—"ओ शास्त्री ! आजा दूध पी ले, तूं रात को बहुत भौंका था।' देखिए मन में तो आदर का पवित्र भाव है परन्तु जिह्वा के अग्र भाग में मधु नहीं, इसलिए उत्तम बात भी अप्रिय-सी लग रही है। कई प्रदेश ऐसे ही हैं जहाँ के नर-नारी अन्दर के बड़े कोमल धर्मात्मा हैं, परन्तु जिह्वा पर मिठास न होने से शोभित नहीं हो पाते। ऐसे बाँगर देश के लिए गुरु गोरखनाथ जी ने भी लिखा है :—

कण्टक देश कठोर नर भैंस मूत को नीर ।
कर्मों का मारा फिरे बाँगर देश फकीर ॥

कहने-कहने में अन्तर है। सभ्यता से कही गई छोटी-सी बात दूसरे के हृदय में घर कर लेती है और सम्मानित कर देती है। श्री आचार्य भगवानदेव जी महाराज सुनाया करते हैं कि एक दिन हमारे हाथ में कमण्डलु को देखकर एक छोटे से बालक ने हम से पूछा—
'What is this sir ?" 'श्रीमान् जी ! यह क्या है ? उस समय मेरा

मस्तक उस छोटे से बालक की शिष्टता के आगे झुक गया। हम बड़े-बड़े हो जाते हैं परन्तु हमें बोलना नहीं आता। हम तो सीधा ही कह देते हैं कि यह क्या है ? हम इतना भी नहीं जानते कि किसी से बात करते हुए 'श्रीमान् जी' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

संसार के सभी महापुरुष अपनी सत्य और मधुर वाणी के कारण से ही महान बने, संसार को जीत सके और अपनी साधना में सफलता प्राप्त कर सके।

महाराष्ट्र के एक सन्त तुकाराम की घटना सुनाता हूं। सन्त तुकाराम एक दिन खेत से गन्ने लेने गये। जब गन्ने ले कर लौट रहे थे, तब मार्ग में खेलते हुए बालकों ने गन्ने मांगे। दयालु सन्त ने दया से द्रवीभूत होकर छोटे बच्चों को गन्ने बांट दिये। केवल एक ही गन्ना शेष रहा। उस गन्ने को लेकर सन्त शिरोमणि तुकाराम घर पहुँचा। सन्त की पत्नि ने देखते ही पूछा—"क्या खेत से एक ही गन्ना लाये हो ?" सन्त ने कहा —"नहीं, गन्ने तो बहुत लाया था परन्तु, मार्ग में छोटे बच्चों ने गन्ने मांग लिए। मुझे दया आ गई। सभी गन्ने वहीं बट गये। यह एक ही गन्ना बड़ी कठीनता से शेष रह पाया।" सन्त जी बात पूरी भी न कर पाये थे कि क्रोध में आग बगुला हो कर उनकी धर्मपत्नी ने उनके हाथ से वह गन्ना छीन लिया और जोर से सन्त की कमर में दे मारा। गन्ने के दो टुकड़े हो गये। उस समय सन्त मुस्कराया और बोला—"देवी जी ! आपने बहुत अच्छा किया, गन्ने के दो टुकड़े कर दिये। हम और आप दो थे और गन्ना एक ही था। अच्छा हुआ दो हो गये। अब दोनों के हिस्से में गन्ना आ जायेगा।" इस बात को सुनकर श्रीमति जी शान्त हो गईं। इसे कहते हैं मधुरता !

वाणी को शास्त्रों में कामधेनु कहा है। "वाक् वै कामधुक्।" वाणी से जो चाहो प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु यदि वाणी को संस्कृत न किया गया तो उलटा परिणाम भी निकल जाता है। जैसे :—

एक बार एक कड़वा आदमी अपने पल्ले पर कुछ चावल बांध कर यात्रा पर चल पड़ा। यात्रा करते-करते थक गया। सोचा, चलो किसी घर में जाकर इन चावलों को उबलवा लेता हूं। भूख को शान्त करके फिर यात्रा करेंगे। यह सोचकर एक बुढ़िया के घर पहुँच गया और अपने चावल उबालने के लिए दे दिये। बुढ़िया चावल उबाल रही थी कि इतने में इसे उनके गृह में बंधी हुई एक भैंस नजर आई। वह बोल उठा कि—"बुढ़िया! यदि तुम्हारी यह भैंस मर जाये तो तुम्हारे घर के इस तंग द्वार से कैसे बाहर निकलेगी? "इस बात को सुनकर बुढ़िया कुपित हो गई और एकदम कच्चे-पक्के चावल गर्म पानी समेत उसकी झोली में डाल कर बोली, "यहां से एकदम चले जाओ नहीं तो सिर में जूते और लगेंगे।" यह उन अधपके चावलों को लेकर जा रहा था। लोगों ने पूछा कि तुम्हारी झोली से क्या गिरता जा रहा है? इसने कहा—कुछ भी नहीं भाई, यह तो मेरी वाणी का रस गिर रहा है। कड़वे बोलनेवालों को ऐसा ही दण्ड भुगतना पड़ता है।

रहीम जी लिखते हैं कि :—

खीरा शिर से काटिए, मलिए नोन लगाय।
रहिमन कड़वे मुखन को चाहिए यही सजाय॥

इसलिए शब्दों को तोल कर और मधुरता के साथ बोलना चाहिए। एक ही शब्द आग लगा सकता है, महाभारत जैसा विश्वयुद्ध

रचा सकता है और एक ही वाक्य युद्ध को समाप्त करा सकता है। द्रौपदी के एक ही वाक्य ने कि अन्धों के अन्धे होते हैं, महाभारत के युद्ध की भूमिका तैयार कर दी थी और राजा पौरुष के उस वाक्य ने जो सिकन्दर को कहा था कि आप मेरे से वह व्यवहार करें जो राजा राजाओं के साथ करते हैं, सारे युद्ध को शान्त करके राज्य वापस लौटा दिया था। शब्दों का कोई मूल्य नहीं होता, शब्द अमूल्य होते हैं।

इसलिए किसी ने कहा था :—

शब्द बराबर धन नहीं जो कोई जाने बोल।
हीरा तो दामों तुले शब्द का मोल न तोल॥

इसलिए कठोर वाणी कदापि न बोले। किसी ने कहा है :—

फितरत को न पसन्द है सख्ती जुबान में।
पैदा न हुई इसलिए हड्डी जुबान में॥

मनुष्य को प्रेम की वाणी ही बोलनी चाहिए। प्रेम के बिना मानव का जीवन नीरस है। किसी ने कहा है :—

मुसाफिर प्रेम की राह न भूल।
प्रेम बिना है जैसे बिन खुशबु का फूल॥

रहीम जी भी कहते हैं।—

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना जुरे, जुरे गांठ पड़ जाय॥

कुछ तो प्रेम को परमात्मा कहते हैं। Love is God and God

is love. प्यार ही परमात्मा है और परमात्मा ही प्रेम है।

कुछ भी हो जीवन का माधुर्य योगी के लिए बड़े महत्व की वस्तु है। योगी के लिए अहिंसा और सत्य वे सोपान हैं जिनका अवलम्बन लेता हुआ योगी समाधि की शिखर पर पहुंच जाता है। सत्य से ही आत्मा की प्राप्ति होती है।

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा" आत्मा और परमात्मा सदा सत्य और तप से प्राप्त होते हैं। सत्य हजारों अश्वमेध यज्ञों से भी बढ़ कर है।

महाभारत शान्तिपर्व में कहा है:—

अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥

"यदि सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सत्य को तुला पर धर कर तोला जाये तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा।"

सत्य स्वर्ग की प्राप्ति के लिए सोपान है। "सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥"

जिस प्रकार सागर के पार उतरने के लिए नौका होती है उसी प्रकार से संसार सागर को तैरने के लिए और मुक्ति प्राप्त करने के लिए सत्य ही सीढ़ी है।

आगे भी कहा है :—

सत्येन वायुरावाति, सत्येनादित्यो रोचते दिवि।
सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।

तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति ॥

"सत्य के बल पर वायु चलती है, अन्तरिक्ष में सूर्य चमता है, वाणी की प्रतिष्ठा सत्य है, सत्य में सब कुछ है। अतः सत्य को ही सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

देख लिया सत्य महाव्रत का कितना महत्व है। परन्तु हम छोटी-छोटी बातों में, छोटे-छोटे प्रलोभनों के वशीभूत होकर कितना झूठ बोलते रहते हैं। झूठ तो हमें मृत्यु सामने आने पर भी नहीं बोलना चाहिए। शास्त्रों में लिखा है:—

ये वदन्तीह सत्यानि प्राण त्यागेऽप्युपस्थिते।
प्रमाण भूता भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

अर्थ :—"जो पुरुष मृत्यु का कष्ट आने पर भी सत्य बोलते हैं, वे सबके लिए प्रमाणिक पुरुष हो जाते हैं और वे सब संसार सागर की विपत्तियों को तर जाते हैं।"

महापुरुष वही बनते हैं जो सत्य के लिए मरते हैं। सत्य के लिए प्राणों की भी परवाह नहीं करते। सब महापुरुषों को महापुरुष बनने का सौभाग्य क्यों मिला? इसीलिए कि उन्होंने सत्य के लिए अपने जीवनों को अर्पण कर दिया। स्वामी दयानन्द जी महाराज के जीवन को देखिए। उन्होंने सत्य के लिए कितने कष्टों को सहन किया। जिस समय स्वामी दयानन्द जी राजस्थान में धर्म प्रचार करने चले तो लोगों ने कहा कि महाराज राजस्थान के लोग बड़े निर्दयी हैं, वे आपको बड़ा कष्ट देंगे, आप वहां मत जाओ। उस समय स्वामी दयानन्द जी बोले—"मैं राजस्थान में धर्म प्रचार करने अवश्य जाऊँगा, चाहे वहां के लोग मेरी एक-एक अंगुली को बत्ती बना कर जला दें।"

अजमेर की घटना है। स्वामी जी का पादरी शूल ग्रेड, ग्रे और राबिन्सन से संवाद हुआ। ईसा पर आक्षेप सुनकर शूल ग्रेड पादरी ने बाद में यह कह दिया कि इस प्रकार की बातों से आप कभी कारावास में चले जायेंगे। इस पर स्वामी जी बोले—"सत्य के लिए कारावास कोई लज्जाजनक बात नहीं है। ईसा को भी फांसी हुई थी।"

संवत् १९३६ में स्वामी जी बरेली में धर्म-क्रान्ति कर रहे थे। कलक्टर, कमीश्नर इसाई थे। वे भाषणों में आते थे। ईसा पर आक्षेप सुन कर एक दिन कमिश्नर महोदय क्रोधित हो उठे। स्वामी जी से लोगों ने कहा कि—महाराज, कमिश्नर नाराज हो जायेगा। इस बात को सुन कर अगले दिन भाषण में स्वामी जी ने कहा, "लोग कहते हैं कि सत्य का प्रकाश मत करो। कलक्टर नाराज होगा, कमिश्नर प्रसन्न न रहेगा, गवर्नर पीड़ा पहुँचायेगा। अजी! चाहे चक्रवर्ती राजा भी नाराज क्यों न हो जाय, हम तो सत्य ही कहेंगे। कौन इस आत्मा को काटेगा? यह नित्य शाश्वत है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्य के लिए सभी महापुरुषों ने कष्टों को झेला, प्राण गंवाये, पत्थर खाये, गालियां खाइं, विष के प्याले पीए परन्तु सत्य को नहीं छोड़ा। हमें महापुरुषों का आचरण करना चाहिए। जो सत्य को न समझेगा और इस पर आचरण न करेगा वह महापुरुष और योगी न बन पायेगा। यदि आप महापुरुषों की श्रेणी में अपना नाम लिखाना चाहते हैं तो सत्य महाव्रत को धारणा कर लीजिये और नहीं तो दूसरा मार्ग तुम्हारे लिए विस्तृत पड़ा है। चुन लो जो चुनना है।

अस्तेय महाव्रत

तीसरा महाव्रत अस्तेय है। अस्तेय का अर्थ चोरी त्याग है। चोरी क्या है ? पहले इसे जान लेना होगा, क्योंकि तभी इसका त्याग किया जा सकेगा । दूसरे के पदार्थों को लेने की लालसा, दूसरे की वस्तु को बिना पूछे उठा लेना और दूसरे की वस्तु को ले कर न देना, रिश्वत लेना, गरीबों का शोषण करना, किसी का वेतन पूरा न देना, अपने हिस्से से अधिक खा जाना, दूसरों की पुस्तकों से नकल करके पुस्तक लिख देना, आदि सब चोरी है।

बहुत से आदमी कहते हैं कि खाने-पीने की चीजों की चोरी चोरी नहीं कहलाती। कृष्ण जी भी मक्खन चुरा लेते थे। लोगों की इस बात में कुछ सार नहीं है। कृष्ण के पास गोकुल में करोड़ों गायें थीं, २० लाख गायें तो कृष्ण के जन्म उत्सव पर नन्द ने दान में दी थीं और प्रतिदिन १३ हजार गायें कृष्णजी महाराज दान करते थे। उस समय भारत में ६८ करोड़ गाये थीं और मनुष्य केवल १६ करोड़ थे। एकआदमी के भाग छः गायें आती थीं। घी-दूध की नदियां बहती थीं। इसलिए मक्खन चुराने की आवश्यकता ही नहीं थी। कृष्ण का नाम लेकर घी-दूध की चोरी करना दुगना पाप है। एक महापुरुष को कलङ्कित करना और दूसरा चोरी करना।

चोरी करना महापाप है, क्योंकि लोभ सब पापों का मूल कारण है। हमारे ऋषियों ने कहा है कि दूसरे के पदार्थों को मिट्टी के ढेले के समान समझना चाहिए। मनु महाराज कहते हैं :—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

अर्थ :—"पर स्त्री को माता के समान, पर द्रव्यों को मिट्टी के ढेले के समान और सर्व प्राणियों को आत्मा के समान जो देखता है वह ही वास्तव में देखता है।"

दूसरे के पदार्थों को मिट्टी का ढेला कहना जितना सरल है उतना इस बात पर आचरण करना कठिन है। बड़े-बड़े त्यागी इस परीक्षा में फेल होते देखे गये हैं। भर्तृहरि जी महाराज के जीवन में आता है कि सर्वस्व त्यागने के बाद भी एक बार रात्रि में चांद की चाँदनी छटछटा रही थी और राज मार्ग पर किसी ने पान खाकर थूक रखा था। भर्तृहरि जी ने उसे अनमोल लाल समझा और उठाने लगे। ज्यों ही हाथ थूक पर लगा तो थूक में भर गया। माथे पर हाथ मार कर भर्तृहरि जी महाराज बोले कि सब कुछ त्यागने पर भी लोभकी तृष्णा अभी नहीं हटी। इसलिए किसी ने कहा है कि महात्मा वही है जिसने लोभ और काम का त्याग कर दिया।

पहुँचा-पहुँचा सब कहें, पहुंचे बिरला कोय।
एक कंचन अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥

लोभ लालच का परिणाम पश्चाताप है। किसी ने कहा है :—

मक्खी बैठी शहद पर, पंख लिए लिपटाय।
हाथ मले सिर धुने, लालच बुरी बलाय॥

ऐसी बात नहीं कि संसार में किसी ने लोभ को न जीता हो। मैं आपको वांका और रांका की कथा सुनाता हूं। एक स्थान पर पति-

पत्नि दो सद्गृहस्ति रहते थे। पति का नाम था बांका और पत्नि का नाम था रांका। दोनों बेचारे गरीब थे। वैसे बड़े धर्मात्मा थे। ग्राम के लोगों ने कई बार उन को कुछ धन देने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्होंने इस बात को कभी स्वीकार नहीं किया। प्रतिदिन वे दोनों बन में जाते थे, लकड़ी काटते थे और उन्हें बेचकर अपनी जीविका चलाते थे। एक दिन ग्रामवासियों ने सोचा कि ये हमारे से सहायता लेने में संकोच करते हैं तो ऐसा करो जब ये बन में जायें तो इनके मार्ग में कुछ सोना डाल दो। ये उसे अवश्य उठा लेंगे और इनका कार्य चल जायेगा। अगले दिन इनके मार्ग में सोना डाल दिया गया। उस समय बांका कुछ आगे थे, और श्रीमति रांका कुछ पीछे आ रही थी। बाँका ने सोना देखा परन्तु एकदम मन में विचार आया कि यह पराया पदार्थ है। इसलिए मुझे नहीं उठाना चाहिए। तुरन्त एक दूसरा विचार यह भी मन में आया कि कभी मेरी धर्मपत्नि के मन में लालच न आ जाये, कभी वे न उठा लें। इसलिए इस सोने पर कुछ मिट्टी डाल देनी चाहिए। यह सोच कर मिट्टी डालनी प्रारम्भ कर दी। इतने में पीछे से रांका जी आ गई और उन्होंने इस सारे कार्य को देखा तो बोल उठी—"पति देव! आप मिट्टी पर मिट्टी क्यों डाल रहे हैं, जो कुछ पड़ा है पड़ा रहने दो और अपना काम करो।" इस बात को सुनकर बाँका चकित हो गया। सोचने लगा ओह! मेरी घरवाली तो मेरे से भी आगे है। मैंने तो इसे सोना समझा परन्तु इसने तो इसे सोना भी नहीं समझा, मिट्टी ही समझा।

जब ऐसी वृत्ति उत्पन्न हो जाये तो समझ लो योग की ओर प्रस्थान हो गया। अस्तेय की योग में इसीलिए ही आवश्यकता है कि हमारी वृत्ति पराये पदार्थों की ओर न जाकर शान्त हो जाती है, इधर-उधर भटक नहीं पाती, सात्विक और निर्मल हो जाती है। ऋषियों ने

इसी वृत्ति का निर्माण किया था। महामुनि कणाद जिन्होंने वैशेषिक दर्शन लिखा इसी प्रकार के ऋषि थे। उनके मार्ग में भी अशर्फियों से भरा हुआ कलश रखा गया और उनकी परीक्षा ली गई थी परन्तु उन्होंने भी उस पर मिट्टी डाल कर यह दिखा दिया था कि आर्य संस्कृति में पराया पदार्थ मिट्टी के समान है। कणाद ऋषि भारी विद्वान होते हुए भी प्रतिदिन शिल्ला वृत्ति (उंछ वृत्ति) से रहता था। स्वयं कण-कण बीनकर जीवन यापन करता था। उस समय के राजा ने जब धन देने के लिए आग्रह किया तो कणाद ऋषि ने कहा कि यदि मैं राजाओं के राजसिक अन्न का सेवन करूंगा तो मैं अपने वैशेषिक दर्शन को नहीं लिख पाऊंगा। मेरी वृत्ति भी राजसिक और तामसिक हो जायेगी।

वेद का यही आदेश है कि अपनी कमाई खानी चाहिए, दूसरे की कमाई खाना ऋणी होना है।

"स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा ते अन्येन सन्नशे ।। यजुः २३।१५।।"

"हे क्रिया सम्पन्न ! अपने शरीर का निर्माण कर, अपने आप यज्ञ कर, स्वयं प्रीति से सेवन कर, तेरी महिमा दूसरे से प्राप्त नहीं की जा सकती ."

जिस समय साधक मन, वचन, कर्म से चोरी का त्याग कर देता है उस समय उसे किसी चीज का घाटा नहीं रहता। योगीराज पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं कि :—

"अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम् ।। योग० ।२।३७।।"

अर्थ :—अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सब रत्न, उत्तम से उत्तम-पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं ।" इस सूत्र की टीका करते हुए महर्षि वेद व्यास जी लिखते हैं :—

"सर्वादिक्स्थान्यस्योपतिष्ठन्ते रत्नानि ।"

"इसकी समस्त दिशाओं में रत्न उपस्थित हो जाते हैं ।"

अस्तेय के व्रतानुष्ठान से पूर्व की स्थिति और अब की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया । व्रत से पूर्व तो हम दुनिया के पदार्थों के पीछे दौड़ रहे थे और दुनिया के पदार्थ हमारे आगे-आगे भाग रहे थे । खूब रिश्वत लेने पर, खूब छल-कपट करने पर, पराया माल हड़पने पर भी हमारा पेट नहीं भरा । हमारा यह पेट लाखों सीमेन्ट के कट्टे, लाखों चीनी की बोरियां, हजारों क्विन्टल लोहा, लाखों मन कोयला, सैकड़ों मन गरीबों का रक्त पी गया परन्तु फिर भी इसका पूरा न पटा । सारी आयु डाके डालकर, दूसरों के खेत काटकर, दूसरों का माल हड़प कर भी हमारी गरीबी दूर न हुई । होती भी कैसे ? चोरी का माल मोरी से चला जाता है । धन जैसे आता है वैसे ही चला भी जाता है । भगवान के इस नियम को कौन काट सकता है ? शराब के ठेकों पर, डाक्टरों की दुकानों पर, सिनेमा घरों में, स्वांग-थियेटर, क्लबों में किसका रुपया बर्बाद होता है ? क्या किसी ब्रह्मचारी का ? क्या किसी सन्यासी का ? या किसी सद्‌गृहस्थि का या किसी योगी का और या किसी अस्तेय के पुजारी का ? नहीं, वहां सब चोरी का माल जाता है । जिस घर में बुरी कमाई का पैसा आयेगा उस घर में तीन चीजें स्पष्ट देखने को मिलेंगी । उस घर का चरित्र दूषित मिलेगा, उस घर में कोई न कोई

सदा चलने वाली बिमारी होगी और उस घर का पैसा अच्छे कार्यों में नहीं लगेगा। इसके विपरीत जिस घर में अच्छी कमाई का पैसा आया होगा उस घर का सदाचार महान होगा, पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली बिमारी नहीं होगी और उस घर का पैसा दानादि शुभ कार्यों में लगेगा।

परन्तु जिस समय साधक अस्तेय का व्रतानुष्ठान कर लेता है तो स्थिति बड़ी ही निराली हो जाती है। पहले माया आगे-आगे भागती थी परन्तु अब अपने आप साधक की ओर भागी आ रही है। साधक ठोकर मार रहा है और वह चरणों में लोट-पोट हो रही है। दशों दिशाओं से रत्न बरस रहे हैं।

स्वामी रामतीर्थ जी ने ऐसी अवस्था के लिए कहा था :—

भागती फिरती थी माया जब तलब करते थे हम।
जब से नफरत हमने की यह बेकरार आने को॥

इसे ही अस्तेय की सिद्धि कहते हैं। यम नियमों की ये सिद्धियां योग के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर देती हैं और साधक आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है। योग कोई साधारण वस्तु नहीं है। योग तो कल्प वृक्ष है। जो चाहो सो लो।

ब्रह्मचर्य महाव्रत

ब्रह्मचर्य भी कोई छोटा-मोटा व्रत नहीं है। यह भी महाव्रत है। यदि यह व्रत पूरा हो गया तो फिर योग में कोई भय नहीं है।

ब्रह्मचर्य योगी की ढाल है । इसकी महिमा से वेद-शास्त्र भरे पड़े हैं। भीष्म पितामह युधिष्ठिर को कहते हैं :—

ब्रह्मचर्यस्य च गुणं शृणु त्व वसुधाधिप ।
आजन्म मरणाद्यस्तु ब्रह्मचारि भवेदिह ॥

न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ।
बह्वयः कोट्यस्त्वृषीणां च ब्रह्मलोके वसन्त्युत ॥'

"हे राजन् ! तू ब्रह्मचर्य के गुणों का श्रवण कर जो आजीवन ब्रह्मचारी रहता है उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता और इसी ब्रह्मचर्य से करोड़ों ऋषियों ने मुक्ति को प्राप्त किया है ।"

धनवन्तरि जी महाराज कहते हैं : –

"मृत्यु व्याधि जरानाशि पीयूषं परमौषधम् ।
ब्रह्मचर्यं महद्यन्त्म सत्यमेव वदाम्यहम् ।।"

"ब्रह्मचर्य से सब रोग, बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट किया जा सकता है इसलिए विशेष प्रयत्न से ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए। यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूं।"

मनु महाराज लिखते हैं :—

"एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्येणाविप्लुतः ।
स गच्छत्युत्तम स्थानो न चाजायते पुनः ॥'

अर्थ :— जो इस प्रकार अखण्डित रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता है और जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आता ।

शंकराचार्य जी महाराज लिखते हैं :—

'न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेताभवेद्यस्तुस देवोनतु मानुषः ॥"

अर्थ :—संसार में जो तप कहा जाता है वह ब्रह्मचर्य ही है। जो अखण्डित ब्रह्मचारी होता है वह देवता है. मनुष्य नहीं।

छान्दोग्योपनिषद् का ऋषि कहता है :—

"अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ।
ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते ॥"

अर्थ :—जो यज्ञ कहलाता है वह ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य से ही जो ज्ञानी है वह उस ब्रह्म को पाता है।

यजुर्वेद के ३४ वें अध्याय के कई मन्त्रों में ब्रह्मचर्य का वर्णन है। मैं पचासवां मन्त्र सुनाता हूं।

आयुष्यं वर्च्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम ।
इदं हिरण्यं वर्च्चस्व ज्जैत्राया विशतादु माम् ॥

अर्थ :— ब्रह्मचर्य से आयु. तेज, धन पुष्टि, शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति प्राप्त होती है। इस ब्रह्मचर्य का हम कभी विलोप न करें।

अथर्ववेद और यजुर्वेद में मृत्यु को जीतने का उपाय ब्रह्मचर्य ही बताया है।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।"

अर्थ :—ब्रह्मचर्य के प्रताप से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया।

"शत जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तमृत्युं दधतां पर्वतेन।"
यजुर्वेद ३५ । १५ ॥

"मृत्यु को ब्रह्मचर्य से दबाते हुए सौ वर्ष तक जीओ।"

ये प्रमाण घोषणा कर रहे हैं कि ब्रह्मचर्य की तपस्या से जो चाहो वही प्राप्त कर लो। यदि कोई बल प्राप्त करना चाहता है तो इससे मनचाहा बल प्राप्त हो जाता है यदि बुद्धि की वृद्धि चाहता है तो बुद्धि मिलती है. यदि दीर्घायु की कामना करता है तो वह पूरी हो जाती है, यदि रोगों को दूर करना चाहता है तो रोगों की निवृत्ति हो जाती है। टेब्लेट्स, केपसूल खा-खा कर और इन्जेक्शन लगवा कर रोगों की निवृत्ति नहीं होती, परन्तु ब्रह्मचर्य औषध से सब रोग समाप्त हो जाते हैं। यदि बुढ़ापे को भगाना चाहते हैं तो बुढ़ापा दूर भाग सकता है, बुढ़ापा अतीव दुःखदायी है। बुढ़ापे का वर्णन शास्त्र-कार करते हैं :—

"अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशन विहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहित्वा दण्डं तदपि न आशा मुञ्चति पिण्डम्॥"

"बुढ़ापे में अङ्ग गल जाते हैं, सिर सफेद हो जाता है, मुख दांतों से खाली हो जाता है, लाठी के सहारे चलता है, परन्तु आशा फिर भी पीछा नहीं छोड़ती।" केवल बुढ़ापा ही नहीं अपितु मृत्यु को भी पराजित करना चाहता है तो वह इस कार्य को भी कर सकता है और मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

इन सब तथ्यों के लिए इतिहास साक्षी है। मृत्यु को जीतना सब से कठिन कार्य है। सभी लोग सदा यमराज से भयभीत रहते

हैं। मौत का नाम सुनने से ही बहुत लोगों का कलेजा ऊपर को आने लगता है। सौ वर्ष का बूढ़ा आदमी भी मरना नहीं चाहता। दस वर्ष का रोगी जो चारपाई पर पड़ा बुरी तरह कराह रहा है वह भी मरना नहीं चाहता, दुनिया के भारी से भारी कष्ट सहन करने के लिए मानव तैय्यार है परन्तु मरने के लिए तैय्यार नहीं है। पतञ्जलि ऋषि ने भी लिखा है कि मौत का दुःख सबसे बड़ा दुःख है जो मूर्खों के समान विद्वानों के सर पर भी चढ़ा हुआ है। अभिनिवेश क्लेश साधारण क्लेश नहीं है। बलवान से बलवान आदमी भी मौत का नाम सुनकर कांप उठता है। मौत से सभी बचना चाहते हैं। मृत्यु को विजय करने का उपाय वेद ने ब्रह्मचर्य बतलाया है। भीष्म पितामह और स्वामी दयानन्द आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं।

संसार जानता है कि भीष्म पितामह कुरुक्षेत्र के मैदान में शर-शैय्या पर पड़े हैं, सारा शरीर छलनी-छलनी हो चुका है, ऐसी विकट अवस्था में मृत्यु आकर ललकारती है। बाल-ब्रह्मचारी शर-शैय्या पर पड़े हुए भी मृत्यु के सामने डट गये। अब भीष्म की अर्जुन के साथ लड़ाई नहीं थी, अब मौत के साथ लड़ाई हो रही थी। एक ओर यमराज है और दूसरी ओर ब्रह्मचारी। यमराज ब्रह्मचरी को खाना चाहता है और ब्रह्मचारी यमराज को। अन्ततोगत्व ब्रह्मचारी ने मृत्यु को परास्त कर दिया। ब्रह्मचारी घोषणा करता है कि जिस समय सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण में आ जायेगा उस समय स्वयं प्राण त्याग कर मुक्ति में जाऊंगा। हुआ भी ऐसा ही। पितामह तीन मास तक कौरव-पाण्डवों को उपदेश देते रहे और जब सूर्य उत्तरायण में आ गया उस समय शरीर छोड़कर स्वर्गधाम चले गये। इसे कहते हैं मृत्यु को जीतना। जो आदमी अपनी इच्छानुसार प्राणों

को छोड़ते हैं वे मृत्यु को जीतने वाले कहलाते हैं।

दूसरा उदाहरण बाल-ब्रह्मचारी दयानन्द का है। स्वामी जी को जीवन में अनेक बार विष दिया गया परन्तु विष भी उनका कुछ न विगाड़ सका। अन्त में उनको बड़ा भयंकर विष दिया गया जिसमें कई प्रकार के विष और कांच पीस कर मिलाया गया था। कहा जाता है कि वह विष इतना भयंकर था कि उसको खा कर मनुष्य एक मिनट भी जीवित नहीं रह सकता था। स्वामी जी ने न्योली क्रिया के द्वारा विष को शरीर से बाहर निकालने का यत्न किया, परन्तु यह विष बाहर न निकल सका। एक-एक दिन में सैकड़ों दस्त आने लगे। सारे शरीर को विष ने फाड़ डाला। ऋषि का वज्र शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया। ऐसी विकट अवस्था में यम देवता अपने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो कर आ पहुँचा। इस बार मृत्यु देव अपनी सारी शक्ति से आक्रमण करने आया था, क्योंकि पहले सोलह बार बुरी तरह से मुंह की खा चुका था। मौत ने पूरी ताकत से ब्रह्मचारी पर धावा किया, परन्तु वाह रे ब्रह्मचारी! तेरे सामने मृत्यु टिक न सकी। तेरी एक ही हुँकार से मृत्यु ने हथियार डाल दिये। इस बार भी मौत की करारी हार हुई। एक मास तक बाल-ब्रह्मचारी दयानन्द जनसमूह को अपने उपदेश से कृतार्थ करते रहे। जब यह देखा कि शरीर विष के कारण अब जनता के काम का नहीं रहा तो दीपमाला के दिन ईश्वर की स्तुति करके, हे प्रभो! तूने अच्छी लीला की। तेरी इच्छा पूर्ण हो।" यह कहते हुए स्वेच्छापूवक इस नश्वर शरीर का त्याग करके मोक्ष को प्राप्त हो गये। इस घटना को देख कर दार्शनिक जगत का उद्भट विद्वान गुरुदत्त एम० ए० नास्तिक से आस्तिक हो गया।

दुनियावालो ! वास्तव में ब्रह्मचर्य की महिमा निराली है। अकेला ब्रह्मचारी दुनिया को हिला देता है। शेरों का मुकाबला करता है, हाथी को बांधने वाली जंजीरों को तोड़ डालता है, अपने तेज से सूर्य को भी लज्जित कर देता है। सारे देवताओं को अपने पीछे चलाता है। जहां से निकल जाता है, लोग देखते ही रह जाते हैं। योगी वन वह मुक्ति को प्राप्त कर जाता है।

पतञ्जलि जी ने भी कहा है:—

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः।"
[ब्रह्मचर्य से अपार बल मिलता है।]

ब्रह्मचर्य क्या है।

जो भोजन हम प्रतिदिन करते हैं, उसका शरीर में जा कर रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मास से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जे से सातवीं धातु वीर्य बनता है। प्रत्येक धातु के बनने में ५ दिन लगते हैं। इस प्रकार सातवीं धातु वीर्य के तैयार होने में कम से कम एक मास से अधिक समय लगता है। १०० बूंद रक्त से एक बूंद वीर्य बनता है। एक मन भोजन से एक सेर खून बनता है। एक सेर खून से एक तोला वीर्य बनता है।

एक बार की कुचेष्ठा से एक तोला वीर्य नष्ट हो जाता है, और दस दिन की आयु घट जाती है। यही वीर्य जीवन का सार है, शरीर का राजा है। इसके निकल जाने से शरीर खोखला हो जाता है, चेहरा पीला पड़ जाता है, आंखों पर चश्मा चढ़ जाता है, उठते-बैठते अंधेरी आती है, अनेक रोगों का घर बन जाता है। इसके सुरक्षित रहने पर मुख पर लाली, नेत्रों में ज्योति, चाल में स्फूर्ति शरीर में

बल, वाणी में ओज, मन में पावनता, आत्मा में आनन्द और जीवन में उत्साह भर जाता है। योगी के योग का भी रहस्य यही वीर्य है। जब तक शरीर में यह तत्व सुरक्षित है तभी तक ध्यान में मन लगता है, योग का मार्ग आगे बढ़ता है। ब्रह्मचर्य के लोप होने पर सारी तपस्या भी भंग हो जाती है। चरित्र के नष्ट होने पर मनुष्य का सर्वस्व नष्ट हो जाता है। इसलिए लिखा है कि चरित्र को खोकर जीने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है।

"To die is better than to lose the character."

योगी के लिए यह सर्वस्व है। इसलिए सारी शक्ति लगाकर ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए।

[क्रमशः]

ॐ

अपरिग्रह-महाव्रत

अपने पास आवश्यकता से अधिक सामान का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है।

महर्षि वेद व्यास ऋषि ने अपरिग्रह का अर्थ और विस्तृत रुप से लिखा है "विषयाणामर्जन रक्षण क्षय सङ्ग हिंसा दोष दर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह"

अर्थः—

विषय और भोग्य पदार्थों का अर्जन करना, उनका रक्षण करना और फिर उनका नाश उनसे संग और उनमें हिंसा आदि दोष देखकर जो विषयों का त्यागना है वहीं अपरिग्रह है। "संक्षेप में विषयों और विषयों की योग्य सामग्री के परित्याग को ही अपरिग्रह कह सकते हैं।

देखने में यही आता है कि जिसके पास जितना भोग्य सामान अधिक है, वह उतना ही अधिक दु:खी है। क्योंकि भोग्य पदार्थों के अर्जन में रात दिन एक करना पड़ता है, और भारी कलेशों को सहन करना पड़ता है। विद्वानों ने ठीक लिखा है:—

अर्थस्योपार्जने दु:खमर्जितस्यापि रक्षणे।
नाशे दु:खं व्यये दु:खं धिगर्थं दु:खभाजनम्॥

अर्थः—

धन के कमाने में दु:ख भरा पड़ा है। रक्षा करने में, नाश में और व्यय करने में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख है। धन दु:ख और चिन्ताओं का ही आगार

है। इस विषय में कथा सुनाते हैं:—

सेठ और शंकराचार्य —

एक बार श्री शंकराचार्य जी महाराज भ्रमण करते हुए जा रहे थे। मार्ग में एक सेठ जी दुखी बैठे थे। सेठ जी को दुखी देखकर वे बोले, "सेठ जी ! आप इतने दुखी क्यों हैं ?" सेठ जी बोले—"महाराज इस संसार में तो दुःख ही दुःख है। आप जैसे महात्माओं को ही संसार में सुख है।" सेठ जी की बात सुनकर शंकराचार्य बोले—'सेठ जी ! यदि ऐसी बात है तो आप क्यों दुःख भोग रहे हैं.? आप भी हमारे साथ चलें। "सेठ जी भी साथ हो लिए परन्तु चार अशर्फियां साथ ले लीं। सेठ जी और महाराज जी चलते रहे। बीहड़ जंगल में रात्रि हो गई। शंकराचार्य जी वन में एक बड़े वृक्ष को देखकर बोले "सेठ जी ! आज की रात्रि इस वन में इस वृक्ष के नीचे व्यतीत करेंगे।" सेठ जी बोले—"नहीं महाराज, और आगे विश्राम करेंगे।" सेठ जी की बात स्वीकार करके शंकराचार्य जी और आगे बढ़ गये। कुछ आगे बढ़कर फिर एक बड़े वृक्ष को देखकर बोल उठे—"सेठ जी ! इस वन में यह पेड़ बहुत अच्छा है, इसी के नीचे विश्राम करेंगे।" परन्तु सेठ जी घबरा रहे थे। घबरा कर बोले "नहीं, महाराज कुछ और आगे चल कर रुकेंगे।" सेठ जी की बातों को सुनकर शंकराचार्य जी मुस्कराये और बोल उठे "सेठ जी ऐसा प्रतीत होता है कि गांठ में माया बांध रखी है—इसलिए डर रहे हो। जो कुछ तुम्हारे पास है वह मुझे दे दो। फिर आपका मन यहीं लग जायेगा।" यह कहकर सेठ जी से चारों अशर्फियां ले ली और चारों दिशाओं में फेंक दीं और कहा "सेठ जी अब क्या हाल है ? अब यहीं रहें या आगे चलें" सेठ जी बोले—"बस महाराज ! अब तो यहीं ठीक है। अब कोई चिन्ता नहीं है।" जब पास में माया थी तब तक भय सता रहा था और जंगल में मन नहीं लग रहा था परन्तु माया के हटते ही सब चिन्ता दूर हो गई।

. . . . .

सेठ और मोची :-

सेठ जी और मोची की बात आपने सुन रखी है। एक साधु और सेठ जी जा रहे थे। एक मोची को देखा जो एक झोंपड़ी में अपने जूते बना रहा था और बड़ा मस्त था। सेठ जी ने साधु से पूछा महाराज यह इतने आनन्द में कैसे है। साधु बोला, यह निनानवे के फेर से दूर है इसीलिये इतने आनन्द में है। जिस दिन यह निनानवे के फेर में पड़ जायगा इसकी भी दुर्दशा हो जायेगी। कहो तो यह दिखला दें। सेठ जी ने कहा हां महाराज निनानवे का चक्कर दिखला दो। साधु ने निनानवें रुपये लिये और मोची की अनुपस्थिति में वहां डाल दिये। मोची आया और उसको निनानवें रुपये की पड़ी थैली मिली। रुपयों को देखकर प्रसन्न हो गया। दिन भर एक रुपया कमाया था। सोचने लगा कि यह रुपया निननावें रुपयों में मिला दूंगा। ये पूरे सौ हो जायेंगे। ऐसा ही किया। निनानवें के १००) सौ हो गये।

दिन भर काम किया परन्तु आज भूखा ही रहा—रोटी भी न खाई।। रात्रि का अंधेरा होने लगा तो मोची सोचने लगा कि अब इस रुपये को कहां रखूंगा। मेरे पास तो अलमारी नहीं, कोई बक्सा नहीं। अन्त में निश्चय किया कि भूमि खोदकर भूमि में दबा दूंगा और ऊपर बोरी डालकर इसके ऊपर सो जाऊंगा। ऐसा ही किया, परन्तु रात्रि में यह चिन्ता लगी रही कि मुझे किसी ने रुपये दबाते हुए जरुर देखा होगा। कोई मुझे रुपयों के लोभ में मृत्यु का ग्रास न बना दे। चिन्ता के कारण रात्रि में नींद न आई। प्रातः काल मोची फिर अपने कार्य में लग गया। दिन भर कमाने से एक रुपया प्राप्त हुआ। सांयकाल सोचा कि सौ में एक रुपया और मिला दूं तो एक सौ एक हो जायेंगे। यह सोचकर एक रुपया जो दिन भर में रोटी के लिए कमाया था रोटी न खाकर सौ में मिला दिया। रात्रि में फिर चिन्ता के कारण निद्रा नहीं आई। इस प्रकार पांच दिन तक मोची दिन में जो कमाता था निनानवें में मिला देता था और रोटी की हड़ताल रखता रहा फलस्वरुप पांच दिन में सूखकर कांटा हो गया। पांचवे दिन साधु सेठ जी को लेकर मोची के द्वार पर पहुंचे।

आज सेठ जी से मोची पहचाना नहीं गया। क्योंकि मोची न पहले जैसा मोटा ताजा था और न ही मस्त था। सेठ जी उसे देखकर चकित रह गये। सेठ जी साधु जी से पूछने लगे "महाराज ! इसकी ऐसी दयनीय अवस्था कैसे हो गई ?" स्वामी जी मुस्कराये और बोले—सेठ जी क्या अब भी पता नहीं चला। यह सब निनानवें का फेर है।" सेठ जी मान गये और महात्मा के चरण स्पर्श करके बोले—हां महाराज ! सचमुच निनानवें का फेर ऐसा ही है।

इसीलिये भर्तृहरि जी ने कहा है—

कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः"

जो एक लंगोटी में रहते हैं वे ही सदा आनन्द में रहते हैं।

पदार्थों के प्राप्त होने पर उनकी रक्षा के लिए भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ता है। कहीं चोरों का भय और कहीं कोई भय। रक्षा करने के बाद भी कोई पदार्थ स्थायी नहीं, विश्व के समस्त भोग क्षण भंगुर है। इसलिए इनका विनाश निश्चित है। विनाश होने पर दुःख सामने हैं। सब पदार्थों में संग हो जाता है, यह संग विशेष दुःख का कारण है। इसी संग के कारण मनुष्य हिंसा आदि सारे कार्य करता है।

हिंसा करता है, चोरी करता है, झूठ बोलता है, सब कुछ करता है। इसलिए जो व्यक्ति जितना संग्रह करेगा वह उतना ही अधिक संग और हिंसा आदि कर्मों को करेगा। इसलिए योगियों का कथन है कि "संग हिंसादि दोषों को देखता हुआ इन भोग्य पदार्थों का संग्रह न करे, और करे तो कम से कम करे। जो सांसारिक बखेड़े में अधिक फंस जाता है, उतना ही अधिक दुःख पाता है।

परिग्रह से समाज भी पीड़ित हो जाता है। एक मनुष्य के पास तन ढकने को वस्त्र नहीं, दूसरी ओर कपड़ो का भण्डार जमा है। एक के पास

सिर छिपाने को झौंपड़ी नहीं है दूसरे के पास बीसियों मकान, कोठियां, बंगले हैं. एक ओर लोग भूखे मर रहे हैं, अकाल से पीड़ित होकर मृत्यु का ग्रास बन रहे हैं, दूसरी ओर अन्न के गोदाम भरे पड़े हैं। अंग्रेजी काल में जिस समय बंगाल में अकाल पड़ा उस समय फौजी गोदामों में सहस्र टन चावल पड़ा हुआ सड़ गया था और जनता भूख से मर गई। ये दूर्भिक्ष की आपत्तियां इन संग्रही लोगों की कृया का परिणाम होती हैं। देश पर आपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं, शत्रुओं का हमला हो रहा है—राष्ट्र की रक्षा के लिये धन की अपील होती है परन्तु करोड़पतियों के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। धर्म के प्रचार के लिये धन की आवश्यकता है परन्तु कौन सा पूंजीपति है, जिसको देश जाति और धर्म की चिन्ता है। सब तिजोरियों पर अलीगढ़ के मोटे मोटे ताले लगाये उन पर सांप बने बैठे हैं। अनाथ —विधवाओं का आर्तनाद इन्हें कभी सुनाई नहीं देता। इन्हें तो अपने बैंक बैलेंस बढ़ाने की चिन्ता है। एक आदमी तड़फ २ कर मर रहा है – सब देख रहे हैं, हम उसे दवाई नहीं पिला सकते—फिर क्या बनेगा इस सम्पत्ति का मैं पूछना चाहता हूं इसके क्या परिणाम निकलेंगे। समाज बर्बाद होकर रह जायेगा, समाज में अशान्ति, दु:ख वैमनस्य की आग फूट पड़ेगी। इसलिये परिग्रह करने वाला व्यक्ति दूसरे के लिये दु:ख दायी है।

सारा संसार एक पिता प्रभु का परिवार है इस कारण से एक दूसरे के साथ सम्बन्ध है फिर भी एक गरीब को देखकर दूसरे का हृदय द्रवित नहीं होता। एक बिमार आदमी को दवाई की आवश्यकता है उसे दवाई नहीं दी जाती। इस सम्पत्ति को अपने साथ कौन बटोर कर ले जायेगा। सब यहीं का यहीं धरा रह जायेगा। सिकन्दर जैसे सम्राट यहां आये परन्तु अपने साथ कुछ भी न ले गये। किसी ने ठीक ही कहा है:—

राजा गये महाराज गये जो दुनियां के वाली थे।
सिकन्दर जब चला यहां से तो दोनों हाथ खाली थे॥

आदमी यह भूल जाता है कि जो सम्पत्ति हमारे पास है वह हमारी

नहीं है वह किसी दूसरे की है। हम तो जब आये थे खाली हाथ आ थे। एक लंगोटी भी साथ नहीं लाये और जब यहां से जायेंगे। यह जो कुछ वैभव हमारे पास है वह किसी ने दिया है और वह जब चाहे हमारे से अपनी वस्तु ले सकता है। हम तो व्यर्थ में इससे चिपटे हुए हैं। जब वह छीनना चाहता है एक मिनट में छीन लेता है–किसी ने ठीक कहा है—

आई अजल आप एकेले चल दिये ।
घर में जमा सब कुछ मगर साथ कुछ न ले गये ।।

हम तो व्यर्थ ही अभिमान में हैं कि हमारे पास इतनी बड़ी सम्पत्ति है। यही सम्पत्ति किसी दूसरे की है। रहीम जी को दान देते हुए उसके मित्र गंगाकवि ने कहा था कि मित्र आप बहुत दान देते हो और जब दान देते हो तो सिर नीचे कर लेते हैं। इसमें क्या रहस्य है? उस समय रहीम जी बोले––

देने वाला और है जो देता है दिन रैन।
लोग भ्रम मुझ पर करें ता विध नीचे नयन ।।

भगवान की वस्तु को हम भगवान के परिवार में नहीं बाँट सकते यह भी एक पाप का भागी बनना है।

मनुष्य पाप करता है, किस लिये ? दो रोटी के लिये। हमारे से पक्षी अच्छे हैं, जो वृक्षों के फूल फल पत्ते खाकर निर्वाह कर लेते हैं।। परन्तु इन घोर कर्मों से बचे रहते हैं। परन्तु एक मानव जो सारी सृष्टि में श्रेष्ठ कहलाने का दम भरता है वह दो रोटी के लिये भाई के गले काटता है। माता-पिता से मुकदमें चलाता है और दरिद्रों का शोषण करता है। जो पेट घास और पात से भरा जा सकता है उसके लिये यह निर्मम संहार। आदमी को पेट के लिये दो रोटी चाहिये। तन ढापने को चार गज कपड़ा चाहिये और रहने को साढ़े तीन हाथ की जगह चाहिये। इससे अधिक उसके लिये सब व्यर्थ है। जो करोड़पति हैं उनको तो दो रोटियां भी नहीं पचती, उनके लिये

तो मूंग की दाल का पानी ही पर्याप्त है फिर क्यों आदमी पाप का भागी बनता है ? इसलिये भगवान से इतना ही मांगना चाहिए जिसमें अपना काम चल जायें। किसी ने ठीक ही कहा था—

साईं इतना दीजिए, जा में कुटम समाय।
मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय॥

आवश्यकताओं को जितना चाहें बढ़ाया जा सकता है और जितना चाहें घटाया जा सकता है। भर्तृहरि जी के जीवन की घटना सुनाते हैं

भर्तृहरि जी को जिस समय वैराग्य हो गया तो राज पाट छोड़ कर जंगल मे चलने का कार्यक्रम बनाया गया। सोचने लगे कि जंगल में रहने के लिए कुछ सामान साथ ले कर चलना चाहिये। पहनने को कुछ वस्त्र भी चाहिए, खाने को आटा दाल चावल चाहिये, सोने को चारपाई चाहिये। इस प्रकार सब मिलाकर एक छकड़े का सामान हो गया। प्रातः काल सब गाड़ी में सामान भरकर चलने लगे तो विचार आया कि मुझ में और एक गृहस्थी में क्या अन्तर है। इतना सामान लेकर क्या मैं वैरागी हूं क्या मैं साधन कर सकूंगा। पुनःविचार हुआ कपड़ों के बिना काम चल सकता है, वस्त्र छाल की लंगोटी बना लेंगे, और दाल चावल के बिना काम चल जायेगा भिक्षा का अन्न अथवा वृक्षों के फलमूल खालेंगे। पात्रों के बिना भी कार्य चल जायेगा हाथों को ही पात्र बना लेगे। चारपाई के बिना काम चल जायेगा भूमि को चारपाई बना लेंगे। यूं करते करते सारा सामान त्याग दिया और एक लंगोटी लगाकर चल पड़े। तपस्या के अनन्तर लिखते हैं कि :—

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनिता संगमुदितः
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव॥

अर्थः — मुनियों के सोने के लिये रम्य भूमि ही चारपाई है, भुजा ही तकिया है, विस्तृत आकाश उनका महल है, वायु पंखा है, चन्द्र ही दीपक है, उनकी स्त्री वैराग्य है इस प्रकार योगी राज के समान आनन्द से रहते हैं। महात्मा इस त्याग से ही आनन्द में रहते हैं। एक घटना और देखिये। स्वामी सर्वदानन्द जी वीतराग महात्मा थे, त्याग की तो वे मूर्ति ही थे। अपने साथ केवल एक कम्बल रखते थे ओढ़ने बिछाने का सारा कार्य वही पूरा कर देता था। कड़कती सर्दी में भी सब कुछ वही था। एक बार वे आर्य समाज के किसी उत्सव में गये स्वामी नित्यानन्द जी जो राजसी ठाठ से रहते थे वे भी वहीं पहुंचे हुए थे। रात्रि में स्वामी नित्यानन्द जी ने स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज को कम्बल में चाकू आसन लगाये देखा उस समय तो कुछ नहीं प्रातः उपहास करते हुए बोले महाराज! आपने रात्रि में चाकू आसन लगा रखा था। इस बात को सुनकर सर्वदानन्द जी बोले "हां" आप ठीक कह रहे हैं हम सर्दी में चाकू आसन लगाया करते हैं"। यह कह कर मन में सोचा कि समय आने पर उचित उत्तर देंगे। कुछ समय के बाद जब उत्सव समाप्त हो गया तो त्यागी स्वामी सर्वदानन्द जी तो अपना कम्बल उठाकर चल पड़े परन्तु स्वामी नित्यानन्द जी कुलि की खोज में घूमने लगे। कोई नहीं मिला। जब कोई नहीं मिला तो स्वयं अपने सिर पर बिस्तरा अटेची आदि सामान उठाकर चले तो ठीक मौका पा विनोद करने के लिये स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज बोले स्वामी जी! चाहे तो रात्रि में चाकू आसन लगा लो और चाहे दिन में गधा बन लो एक ही बात है" स्वामी नित्यानन्द जी समझ गये। स्वामी जी ने नहले पर दहला लगा दिया है अपना सा मुंह लेकर रह गया। सामान वाले सारा जीवन गधे की तरह लदे रहते हैं और इन सांसारिक भोगों में फंसे रहते हैं। संसार में हर जगह चमक दमक है जो मनुष्य को फंसा लेती है। ये इन्द्रियों के जो सुख, भोग, आराम, धन, माल यश है मनुष्य का असली मार्ग इस से बच कर जाता है। जीवन में प्रतिदिन मनुष्य की परीक्षा होती है। एक ओर इन्द्रियों को लुभाने वाले, रुप, रस, स्पर्श शब्द विषय हैं दूसरी ओर

अध्यात्मक आनन्द है, एक तरफ एक मिनट का नकली सुख है दूसरी ओर ३१ नील वर्ष से अधिक रहने वाले श्रृंगार, एक ओर धन वैभव दूसरी ओर सरलता, एक ओर आराम दूसरी ओर तप, एक ओर हिंसा दूसरी ओर दया, एक ओर छल कपट दूसरी ओर सत्य, एक ओर चोरी दूसरी ओर त्याग एक ओर असंयम दूसरी ओर संयम, एक ओर तृष्णा दूसरी ओर सन्तोष, एक ओर धन वैभव है दूसरी ओर प्रभु दर्शन एक ओर प्रेम मार्ग और दूसरी ओर श्रेय है। ऋषियों का संकेत है जो प्रेम मार्ग को चुनता है उनका विनाश हो जाता है और जो श्रेय मार्ग का आलम्बन करता है उसका कल्याण हो जाता है। इसलिये कल्याण के पथिक खूब सोचलें और समझलें कि किधर लाभ है इसी में तुम्हारी परीक्षा है। जो श्रेय को चुनता है वह पास और जो प्रेम को चुनता है वह फेल है।

परिग्रह परिणाम आपने पढ़ा और अपरिग्रह का फल सुनें योगीराज पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं :—

अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथन्ता सम्बोधः।

अपरिग्रह की प्रतिष्ठा होने पर योगी को अपने पूर्व जन्म का पता चल जाता है कि मैं क्या था और कहां था त्याग से अन्तःकरण निर्मल और सात्विक हो जाता है और अन्तः करण के निर्मल होने पर जन्म जन्मान्तर के संस्कारों का साक्षात कार करने में योगी सफल हो जाता है। हर मनुष्य को अपने अतीत को जानने की इच्छा लगी रहती थी परन्तु सिर पटकने पर भी कोई कुछ जान नहीं पाता। परन्तु योगी इसमें सफल हो जाता है। यह साधारण कार्य नहीं है। इसीलिए तो योग से बढ़कर कुछ नहीं।

यह पांच यंत्रों का वर्णन हुआ, आगे पांच नियमों का वर्णन करेंगे।

शौच

शौच दो प्रकार का होता है। एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य शुद्धि मिट्टी जल आदि से होती है और आभ्यन्तर शुद्धि चित्त मलों के त्याग से होती है। इस विषय में मनु महाराज लिखते हैं—

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यांभूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धियति।

"शरीर जल से, मन सत्य से, आत्मा विद्यातप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।,,

शुद्धि के प्रकरण में आगे वे लिखते हैं—

विद्वान् शान्ति से, यज्ञादि श्रेष्ठ कार्य करने वाले दान से, गुप्त पाप करने वाले जप से और वेदवेत्ता तपस्या से शुद्ध होते हैं।

शुद्धि सब के लिये आवश्यक है। सर्व प्रथम साधक को तीन बजे उठकर शीतल जल से मुख प्रक्षालन करना चाहिये।

रात्री में शयन से अनेक रोगों के कीटाणु मुख में इकट्ठे हो जाते हैं, इसलिये अच्छी प्रकार कुल्ला करके उनको दूर कर देना चाहिये। मुख धोने के बाद थोड़ा शीतल जल पीकर लघु शंका करनी चाहिए। इससे शरीर की गर्मी दूर होकर अनेक रोगों से रक्षा होती है। पुनः शौच के लिये जावें। प्रातः शौच जाना बहुत जरुरी है। देर में शौच जाने से मल कुपित हो जाते हैं जो सब रोगों के कारण बनते हैं। क्योंकि लिखा भी है 'सर्वेषां रोगाणां निदानं

कुपिताः मलाः, । सब व्याधियों की जड़ मलों का कुपित होना है । महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज ने सुश्रुत संहिता में लिखा है:—

आयुष्यनुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ।
तदत्र कूजनाध्मानोदर गौरवकारणम् ॥

अर्थ:— प्रातः उषा काल में मल मूत्र के त्याग से आयु बढती है और अन्तों का गुड़गुड़ाना, पेट का फूलना और भारीपन आदि रोग दूर होते हैं ।,,

जो प्रातः शौच न जाकर देर से मलमूत्र का त्याग करते हैं उनके मल मूत्र पेट में सड़कर विष उत्पन्न कर देते हैं इससे शौच ऊपर की ओर जाने लगता है और जठराग्नि में जाकर पचने लगता है। इससे सब रोग उत्पन्न हो जाते हैं । क्योंकि सिद्धात यह है कि यदि बेकार चीज बाहर न निकले तो भीतर दुर्गन्ध और विष उत्पन्न करेगी । उसके विषैले प्रमाणु अन्तड़ियों में समाकर सम्पूर्ण शरीर में बुरा प्रभाव डालेंगे । इसी कारण से बहुत लोग रोगों के शिकार रहते हैं और उदर सम्बन्धित अनेक रोग उन्हें सदा घेरे रहते हैं । किसी को पेट के कृमि हैं, किसी को गैस ट्रबल है, किसी को खट्टी अड़कारें आती हैं, किसी को वायु का गोला उठता है, किसी को कब्ज का रोग है, किसी का पेट अफर रहा है, किसी को भूख नहीं लगती, किसी का खून खराब है, किसी के पेट में गुड़ गुड़ है, किसी को आलस्य प्रमाद छाया है. किसी को जिगर है, किसी को तिल्ली है' किसी को बवासीर है, किसी को कुछ है किसी को कुछ है सब लोग दवाओं का सहारा लेकर दिन काट रहे हैं । कोई हिंगवास्टक चूर्ण खाता है, कोई द्राक्षासव पीता है, कोई साल्ट खाता है. कोई एनेमा चढ़ाता है, कोई गोलियाँ खाता है । ये सब प्रकृतिक मार्ग को छोड़ने और कुप्रथ्यों का भयंकर फल है । प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती, जो प्रकृति के नियमों को तोड़ता है उससे प्रकृति भी गिन २ कर बदला लेती है । इस लिये इन कार्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

शौच के अनन्तर दातुन करनी चाहिए चरक में दातुन के लाभ यूं लिखे हैं:—

निहन्ति गन्धवैरस्यं जिह्वादन्तस्याजं मलम् ।
निष्कृष्य रुचिमाधत्ते सद्यो दन्त विशोधनम् ॥

प्रतिदिन दातुन करने से जिह्वा, दान्त और मुख के अन्दर का मैल निकल जाता है । रूचि वढती है,,

चाणक्य मुनि लिखते हैं कि यदि राजा भी गन्दे दान्त रखता है तो उसे श्री छोड़ देती है ।

दन्त धावन के पश्चात् योगासनों का अनुष्ठान करें । योगासनों से मल दूर होते हैं और शरीर निरोग एवं स्वस्थ रहता है । योगासनों के बाद स्नान करें ।

शरीर की त्वचा में रोम कूप होते हैं । इन से शरीर का मल बाहर निकलता है । यदि ये प्रतिदिन स्नान करके साफ न किये जाएं तो शरीर रोगी हो जाता है । आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक शास्त्र' में स्नान के गुण इस प्रकार लिखे हैं:—

पवित्रं वृष्यमायुष्यंश्रम स्वेद मलापहम् ।
शरीर वल सन्धानं स्नानमोजस्कर परम् ॥

स्नान से शरीर पवित्र हो जाता है । वीर्य और आयु की वृद्धि होती हैं, स्नान से पसीना, थकावट तथा मल दूर हो जाता है । शारीरिक वल वढ़ता है तथा ओज की अत्यन्त वृद्धि होती है ।

धन्वन्तरि जी सुश्रुत में लिखते हैं:—
स्नान से निद्रा, जलन, थकान, पसीना, खाज, प्यास को नष्ट करता है । हृदय के लिए हितकारी है । सब मलों को दूर करता है । सब इन्द्रियों का शोधन,

तन्द्रा और पाप का नाश करता है। चित्त को प्रसन्न करता है, पुरुषार्थ बढ़ाता है, रक्त शुद्ध होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। इस प्रकार से स्नान करने से सब रोग नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

रोगों को दूर करने के लिये और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये नित्य प्रति स्नान करना चाहिए ! विद्वानों ने लिखा है कि "शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानंमाचरेत्, सौ कार्य छोड़कर खाना चाहिए और हजार कार्य छोड़कर स्नान करना चाहिए। शरीर की शुद्धि के साथ-साथ वस्त्रों की शुद्धि भी रखनी चाहिये और अपने निवास स्थान को भी निर्मल रखना चाहिये। जो लोग अपने वस्त्र-शरीर और आवास को स्वच्छ नहीं रख सकते इनकी योगसाधना भी शंकास्पद है।

बाहर की सफाई के साथ-२ अन्त: करण की सफाई भी आवश्यक है। अन्दर की पवित्रता राग द्वेष, काम क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार आदि के त्यागने से होती है, जिस समय तक मन में ये शत्रु विद्यमान है तब तक साधना के घर दूर हैं। कोई साधक इन को दूर किये बिना प्रभु के दर्शन नहीं कर सकता।

महात्मा बुद्ध और एक बुढ़िया की कथा सुनाता हूं। एक दिन महात्मा बुद्ध भिक्षा के लिये किसी ग्राम में गये। वहां पर एक बुढिया ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की महाराज ! मुझे परमात्मा के दर्शन कराने की कृपा करो। बुढिया की प्रार्थना का सुनकर बुद्ध भगवान बोले—अच्छा बुढ़िया मां मैं कल आपके घर आऊंगा और आपको प्रभु दर्शन करा दूंगा,, यह कहकर महात्मा जी चले गये। अगले दिन महात्मा जी ठीक समय पर बुढिया के द्वार पर पहुंच गये। बुढिया पहले ही प्रतिक्षा कर रही थी। आज बुढ़िया ने महात्मा जी के स्वागत के लिये बढ़िया-२ पदार्थ खाने के लिये बनाये थे। हलवा भी बनाया था खीर भी बनाई थी और कई प्रकार की मिठाइयां भी बनाई थी। इन सब पदार्थों को महात्मा जी को देने के लिये बुढिया भागी-२ महात्मा जी के समीप आई। महात्मा जी ने अपना कमण्डलु में कूड़ा करकट भरा पड़ा था।

कूड़े करकट को देखकर बुढ़िया बोली "महाराज कमण्डलु को मुझे दो– इसमें कूड़ा पड़ा हुआ है– लाओ इसे पहले साफ कर देती हूं ।" महाराज जी बोले– नहीं बुढ़िया मैया । इसे साफ करने की कोई आवश्यकता नहीं है । हम साधु लोग हैं इसी तरह खालेंगे– आप इसी में ये सब पदार्थ शीघ्र डाल दो– फिर मैं आपको भगवान् के दर्शन करा कर शीघ्र जाऊंगा । विलम्ब मत करो। बुढ़िया महात्मा की बात को सुनकर बोली– महाराज । मैं अपने बढ़िया पदार्थ कूड़े करकट से भरे पात्र में नहीं डाल सकती । जिस समय बुढ़िया ने यह कहा तो महात्मा जी मुस्कराये और बोले माँ ! जब आप अपने अच्छे पदार्थों को कूड़े करकट में नहीं डाल सकतीं तो मैं सब से सुन्दर प्रभु को कूड़े करकट से भरे हुये तेरे हृदय में कैसे बिठलाऊं । बिना सफाई तो घर में किसी साधारण अतिथि को भी नहीं बुलाया जाता । यदि नगरी में किसी मंत्री या प्रधान को बुलाना हो तो इसके लिये कितनी तैय्यारी करनी पड़ती है। कितनी सफाई करनी पड़ती है । मनुष्य चक्रवर्ति सम्राट राजाओं के राजा महाराजा परमात्मा को अपने हृदय–मन्दिर में बुलाना चाहता है– इसके लिये कोई तैय्यारी नहीं, किसी बुराई को हटाने का नाम नहीं, फिर कैसे प्रभु का आगमन और दर्शन होगा । यदि किसान भूमि को तैयार किये बिना बीज बोकर फल की कामना करे तो क्या उसे मनोवांछित फल मिल जायेगा। इसी प्रकार चित्त भूमि को तैय्यार किये बिना भक्ति का अंकुर चित्तभूमि में कैसे पनप सकेगा ? अतः सबसे पहले मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवन का निरीक्षण करे और जीवन में जो बुराई हो उसे निकाल बाहर करे । बुराई विष के तुल्य है– एक ही बुराई जीवन को घुन की तरह खा जाती है । इसलिये बुराई को विष के तुल्य समझकर त्याग देना चाहिए। Every thing which weaknes you leave that as poison. वह चीज जो तुम्हे कमजोर कर रही है उसे एक दम छोड़ देना चाहिए वरना जब तक कोई पाप मन में रहेगा योगाभ्यास में मन न लगेगा । कबीर जी भी कहते हैं:––

माला लेई काठ की धागे लेई पिरोय ।
मन में घुण्डी पाप की नाम जपे क्या होय ॥

जिस समय अन्दर वाहर की शुद्धि हो जाती है तो उस समय योगी राज पातञ्जली जी महाराज लिखते हैं कि:—

"शौचात्स्वाङ्ग जुगुप्सा परैरसंसर्गः"

"शौच सिद्ध होने पर योगी को अपने शरीर से घृणा उत्पन्न हो जाती है और वह दूसरे लोगो के शरीरों से भी स्पर्श करना छोड़ देता है।"

प्रतिदिन शरीर आदि की सफाई करके योगी यह जान लेता है कि यह शरीर मल से भरा हुआ है। वार-२ शुद्धि करने पर भी शुद्ध नहीं हो सकता। इस कारण से साधक को अपने शरीर से मोह छूट जाता है। उसे अपने ही शरीर से विरक्ति नहीं होती— अपितु उसे दूसरे शरीरों से भी वैराग्य हो जाता है— क्योंकि वह समझ जाता है कि दूसरों के शरीर भी मेरे की तरह मल युक्त हैं। जिस समय सायक दूसरों के शरीरों के संसर्ग से छुट जाता है— वह अपने एक वहुत वड़े शत्रु पर जीत प्राप्त कर लेता है। वह शत्रु है स्पर्श विषय। स्पर्श विषय पर अधिकार कर लेना साधारण कार्य नहीं है। हाथी जैसे महाकाय प्राणी स्पर्श विषय के कारण मारे जाते हैं। ऐसे वड शत्रु पर सिद्धि प्राप्त करने का शौच ही सधान है।

शौच से केवल इतना ही लाभ होता हो— यह वात नहीं है। अन्य भी वहुत वड़े-२ लाभ शौच के हैं। पतञ्जलि जी लिखते हैं:—

"सत्त्व शुद्धि सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियात्म दर्शनयोग्यत्वानि च ॥"

अर्थः— शौच से अन्तः करण की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों पर विजय तथा आत्म दर्शन की योग्यता प्राप्त हो जाती है।"

इन लाभों से पता चलता है कि यदि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में करना चाहे, सदा प्रसन्न रहना चाहे, अन्त: करण को निर्मल करना चाहे तो शौच के महत्व को समझे और इस पर आचरण करे।

सन्तोष

धर्मानुष्ठान के द्वारा पुरुषार्थ करने पर प्रभु की ओर से जो फल मिलता है उसमें प्रसन्न रहना और यह न सोचना कि यह फल मुझे कम मिला है– यही सन्तोष है। वहुत से लोग अकर्मण्यता को ही सन्तोष मान बैठे हैं। हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते हैं, कुछ कार्य नहीं करते भाग्य भरोसे बैठे हैं, और यह माला रटते रहते हैं कि:—

अजगर करे ना चाकरी–पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये सब के दाता राम॥

एसे लोग सारा दिन भाग्य भरोसे ठाली बैठे रहते हैं। जब इन्हें किसी काम के लिये कहा जाता है तो ये बोल उठते हैं हम तो सन्तोषी जीव हैं। ये सब सन्तोषी नहीं आलसी-प्रमादी और निराशावादी हैं। ये स्वयं तो आलस्य की मूर्ति है ही परन्तु साथ-२ ये आलस्य का प्रचार भी करते रहते हैं– इनका मन्त्र यह है:—

राम भरोसे बैठ के रहो खाट पे सोय।
अन होनी होवे नहीं होनी हो सो होय॥

किसी शुभ कर्म को न करना हम इसे सन्तोष नहीं कह सकते। सन्तोष का अर्थ है खूब पुरुषार्थ करे, पुरुषार्थ के अनन्तर जो फल मिले उसमें सन्तुष्ट रहे, अधिक लेने की इच्छा न करे, अधर्म से कभी कमाई न करें और

व्यर्थ की लालसा तृष्णा का दास न होवे और शुभ कर्मों में आपत्ति आने पर चिन्तातुर होकर कार्य को मध्य में न त्यागे। हमने यह देखा है कि लोग सन्तोष का अर्थ नहीं जानते। कुछ लोग ऊपर से सन्तोषी बने बैठे हैं, दूसरों को उपदेश देते रहते हैं कि इस दुनिया में क्या रखा है? मनुष्य जब यहां से चलता है तो सब यहीं का यहीं धरा रह जाता है। दुनिया के ये सब कार्य टण्टे ही हैं, यह रोटी खाना भी टण्टा है, रोटी बनाने का बड़ा बखेड़ा है। कहीं आग जलाओ कहीं कुछ करो कहीं कुछ करो। रोटी बनाने की बजाय आटा घोलकर पी लेना चाहिये। ऐसे लोगों को संसार के सब कार्य बखेड़े ही लगते हैं। इन्हें वेदाध्ययन भी बखेड़ा लगता है, यज्ञ सन्ध्या भी बखेड़ा लगता है, गौ सेवा भी बखेड़ा है और सारे परोपकार के कार्य बखेड़ा प्रतीत होते हैं। बड़े आश्चर्य का विषय है– लोग दूध पीना चाहते हैं परन्तु वे गाय को रखना बखेड़ा समझते हैं। फल खाना चाहते हैं परन्तु बाग लगाना बखेड़ा समझते है लोग महलों में रहना चाहते हैं, पंखों के नीचे बैठना चाहते हैं परन्तु ईटें बनाना– भट्टे चलाना आदि कार्य को बखेड़ा मानते हैं। सच्ची बात यह है लोग ऊपर-२ से त्याग का ढोंग रचाते हैं, सन्तोष का पाठ करते हैं, परन्तु अन्दर सारी इच्छाएं भरी पड़ी हैं। जो लोग रोटी को बखेड़ा कहते हैं उनकी खुराक का खर्चा साधारण व्यक्तियों से दस गुणा अधिक होता है। कहने को तो महात्मा अन्न नहीं खाता, बड़ा त्यागी है, बड़ा तपस्वी है, बड़ा सन्तोषी है– परन्तु इसे सन्तरों के रस, बादाम, काजू, सेब, अंगूर प्रतिदिन घड़ियों चाहिए। ये लोग जो ब्रह्म बने बैठे हैं और कहते हैं हम तो ब्रह्म हैं, हम तो पूर्ण काम, पूर्ण तृप्त हैं हमें कुछ नहीं चाहिए– मैं सच्च कहता हूं संसार में सबसे अधिक इनकी ही तृष्णा बढी हुई है। इनकी एक भी ऐसी क्रिया नहीं जिससे त्याग का परिचय मिलता हो। इन्होंने संसार की किस वस्तु का त्याग किया है? क्या इन्हें कारें नहीं चाहिये? क्या इन्हें कोठियां नहीं चाहिये? क्या फल मेवे दूध-घी नहीं चाहिए? क्या इन्हें पैसा नहीं चाहिए? क्या इन्हें सेवा के लिये चेले चेलियां नहीं चाहिये? यह सब कुछ

चाहिये फिर मैं पूछना चाहता हूं कि यह आयेगा कहां से ? ये लोग तो ब्रह्म बने बैठे हैं और दूसरों को भी यही शिक्षा देते हैं। क्या इनको कोठियों के लिये भट्टों की जरुरत नहीं है क्या कारों के लिये फैक्टरी नहीं चाहिए, रोटी और फलों के लिये खेती कौन करेगा ?

ओ संसार के लोगो दूसरों को धोखा देना छोड़ो। मैं घोषणा पूर्वक एक बात कहना चाहता हूं — यदि तुम्हें भगवान ने कान दिये हों तो सुनो और बुद्धि दी हो तो विचारो। विना पुरुषार्थ के संसार में कुछ प्राप्त नहीं होगा।

संसार में यह जो कुछ नजर आ रहा है यह सब परिश्रम का फल है। यदि आप कुछ विद्या पढे हैं तो मेहनत से, यदि आप बलवान बने हैं तो मेहनत से, यदि किसी ने कोठियां बनाई हैं तो मेहनत से। अपने आप कुछ नहीं होता। इसलिये यदि कुछ बनना है और कुछ करना है तो आलस्य को त्याग कर पुरुषार्थ करो और जो फल मिले— उसमें आनन्दित रहो। सन्तोष की सिद्धि के लिये पुरुषार्थ का त्याग नहीं किया जाता है। कामनाओं का त्याग करना पड़ता है।।

कामनाओं के जाल में फंसा हुआ व्यक्ति सन्तोष के मार्ग पर नहीं चल सकता, क्योंकि कामनाओं का पसारा विस्तृत है। कामनाओं को कभी भी पुरा नहीं किया जा सकता। एक कामना दूसरी कामना को जन्म दे देती है। जिस समय मनुष्य के पास साइकिल नहीं होती तो साइकिल की इच्छा होती है। जब साइकिल मिल जाती है तब मोटर साइकिल की इच्छा होती है, जब मोटर साइकिल मिल जाती है तो कार की इच्छा होती है, जब कार मिल जाती है तो हैलीकोपटर की इच्छा होती है। इस प्रकार इच्छा बढती चली जाती है।

जब हमारे पास झोंपड़ी थी तो ईंटों के भवन की इच्छा थी और जब एक मंजिल का भवन बन गया तो फिर दो मंजिले भवन की इच्छा

हुई, जब दो मंजिल का भवन बन गया तो तीन मंजिले भवन की इच्छा हो गई, जब तीन मंजिला भवन बन गया तो चार मंजिले भवन की इच्छा जाग उठी, आज अमेरिका में १०३ मंजिला मकान है फिर भी उनकी इच्छा शान्त नहीं हुई।

जब एक रूपया होता है तो दस की इच्छा होती है, जब दस होते हैं, सौ की इच्छा होती है, जब सौ होते हैं तो हजार की इच्छा हो जाती है—इस प्रकार इच्छा बढ़ती जाती है।

किसी ने कहा भी है:——

एक हुआ तो दस होते, दस हुए तो सौ की इच्छा है।
सौ हुए तो यह सोच हुआ, हजार होते तो अच्छा है॥

इस तरह बढ़ते २ राजा के पद पर पहुंचा है।
परन्तु फिर भी शान्त नहीं हुई ऐसी डायन यह तृष्णा है॥

इस प्रकार आज संसार में सभी सुख वैभवों की वृद्धि हुई है। पहले खद्दर का कपड़ा पहनते थे, आज टेरीलीन और टेरीकोट के बूसर्ट पहनते हैं, परन्तु यह सब कुछ होने पर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं हुई अपितु तृष्णा और अधिक बढ़ गई। तृष्णा सांसारिक पदार्थों से घटती नहीं बढ़ती है। ऐतिहासिक घटना से स्पष्ट है।

अकबर—बीरबल और किसान का दृष्टान्त:—

एक बार अकबर और बीरबल भ्रमण करते हुये जा रहे थे। मार्ग में एक किसान को बड़े २ मिट्टी के ढ़ेलों पर सोते हुए देखकर सम्राट अकबर आश्चर्य चकित रह गया। बीरबल को सम्बोधित करके बोला—

"मन्त्रीवर ! यह किसान कितने मोटे २ मिट्टी के ढ़ेलों पर पड़ा सो रहा है, हमें तो कोमल गददों पर भी नींद नहीं आती । इसका क्या कारण है। वादशाह की वात सुनकर वीरवल वोला " महाराज ! किसान सन्तोष का जीवन व्यतीत करता है इसीलिये इसे खेत में भी नींद आ गई है । यदि यह किसान अपनी लालसाओं को वढ़ा ले तो फिर इसका भी हम जैसा ही हाल हो जायेगा । यदि आप आदेश दो तो मैं इस किसान के जीवन में यही कुछ दिखा सकता हूँ ।" अकवर ने लालसाओं का खेल देखने के लिए वीरवल को स्वीकृति दे दी वीरवल ने किसान को उठाया और उसके सामने एक मनमोहक प्रस्ताव रख दिया वीरवल किसान को वोला "किसान ! दिल्ली का राजा और मन्त्री तुम को देहली लेजाने के लिये आये हैं । वहाँ तुम्हें कोठी और जीविका के सव ठाठ मिलेंगे । तुम हमारे साथ दिल्ली चलो ।" किसान इस सुन्दर प्रस्ताव को सुनकर देहली चल पड़ा । दिल्ली आकर किसान को एक ऐसी सुन्दर कोठी में ठहरा दिया जहाँ सभी प्रकार का आराम था । सर्वप्रकार के सामान इसे दिये गये । किसान का खूव मन लग गया ।

क्रमश: गर्मी के दिन व्यतीत हो गये और सर्दी का समय आ गया। अव किसान को सर्दी के कपड़े दिये जाने थे । वीरवल ने किसान के लिये एक से एक वढ़कर गद्दा रजाई आदि वस्त्र भेजा । परन्तु जानवूझ कर जो गद्दा भेजा उसमें कुछ विनौले रखा दिये थे । किसान रात्री में जव इस गद्दे पर सोया तो नींद नहीं आई और मन में सोचने लगा कि यदि वीरवल जी मिल गये, तो उनके सामने अपने मन की वात रखूं । प्रातः काल वीरवल जी अकवर को साथ लेकर अपने आप ही उधर जा निकले और किसान से राजी की खुशी की वात पूछ कर कहा " किसान ! जो कपड़े तुम्हें मिले हैं वे ठीक तो हैं कोई कमी तो नहीं—यदि कोई कसर हो तो निस्संकोच वताओ और कपड़े भी भिजवाये जा सकते हैं ।" इस वात को सुनते ही किसान वोल उठा "महाराज मैं तो स्वयं आप से मिलना चाह रहा था । मुझे आज रात्री भर नींद नहीं आई । आपने जो गद्दा भेजा है—उसमें दो चार विनौले रह गये हैं और वे सारी रात चुभते रहे । किसान की वात सुन कर वीरवल ने अकवर की ओर संकेत

करके कहा "देखो महाराज ! यह वही किसान है जो मिट्टी के मोटे २ ढेलों में आराम से सोता था परन्तु अब गद्दों पर भी नींद नहीं आती। इसको बिनौले भी चुभते हैं।

वास्तव में मनुष्य की यही वास्तविक अवस्था है। यह तृष्णा ही संसार के सब कलहों और दुःख का कारण है। ज्यों २ मनुष्य की इच्छा बढ़ती है, त्यों २ दुःखों की अभिवृद्धि होती है। आज के संसार के सब दुःखों का यही मूल कारण है। पहले जिस समय लोग झोंपड़ों में रहते थे तो सुखी थे परन्तु आज महलों में रहकर दुःखी हैं। पहले लोग पैदल चलते थे तो सुखी थे परन्तु आज कारों में चलने पर दुःखी है पहले लोग चार २ आठ २ आने गज का मोटे कपड़े पहन कर आनन्दित थे परन्तु आज पचास रुपये गज का कपड़ा पहन कर दुःखी हैं। इस का क्या कारण है, केवल तृष्णा लोग अपनी इच्छाओं को बढ़ा लेते हैं सन्तोष का जीवन व्यतीत नहीं करते उसका परिणाम दुःख निकलता है ज्यों २ व्यक्ति तृष्णा का शिकार होता जाता है त्यों २ दुःखों की भट्टी में भस्म होता जाता है। तृष्णा की आग ऐसी विचित्र है जो किसी पर दया नहीं करती सब को जला ही डालती है।

किसी ने ठीक ही कहा है—

तृष्णा अग्नि प्रलय की,
तृप्त कबहुं होय।
सुर नर मुनि अरु रङ्क सब,
भस्म करत है सोय॥

तृष्णा का खेल निराला है। तृष्णा धन की प्राप्ती के लिये सारी सारी रात जागरण कराती है, धनियों से आगे हाथ जुड़वाती है, नाक रगड़वाती है श्मशानों में तपस्या करवाती है। तृष्णा फंसा व्यक्ति मारा-२ फिरता है। नाको चने चाबता है, परन्तु सारी आयु खोकर भी पल्ले कुछ नहीं पड़ता। आखिर में यही कहता है, जीवन व्यर्थ हो गया— फूटी कौड़ी भी न मिली। भर्तृहरी जी लिखते हैं:—

उत्खातं निधि शंकयाक्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवः।
विस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः॥
मन्त्राराधन तत्परेण मनसा नीतः श्मशाने निशाः।
प्राप्तः काल वराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम्॥

भर्तृहरि जी कहते हैं कि रुपये पैसे के लालच में मैंने भूमि को खोद डाला, पर्वतों की धातवें जला डालीं नदियों के स्वामी समुद्र को भी पार किया, राजाओं की यत्न से सेवा की और श्मशानों में मन्त्रों का जप करते हुए रातों व्यतीत करदी परन्तु मुझे फूटी कोड़ी भी नहीं मिली– हे तृष्णे। "अब तो मुझे छोड़ दे"

तृष्णा के पीछे पड़ने पर जो दुर्दशा होती है उसका एक दृश्य– भर्तृहरि जी ने खींचा है। ऐसे-२ पता नहीं कितने नाटक यह तृष्णा दिखाती है। अङ्ग-२ गलने पर, शरीर में झुरियाँ पड़ने पर भी जब तक दम नहीं निकल जाता तब तक यह मनुष्य का पिंड नहीं छोड़ती कवि कहता हैं—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशन विहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चति आशापिण्डम्॥

अर्थः—मनुष्य के अंग गल जाते हैं' सिर के बाल सफैद हो जाते हैं, मुख दान्तो से खाली हो जाता है। लकड़ी का सहारा लेकर चलता है–तब भी तृष्णा पीछा नहीं छोड़ती कबीर महाराज भी कहते हैं–

माया मरी न मन मरा, मर मर गये शरीर।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर॥

आचार्य चाणक्य ने लिखा है कि तृष्णा से बड़ी दूसरी व्याधि नहीं है–

शान्ति तुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णायाः परा व्याधिर्न च धर्मो दया समाः॥

शांति के बराबर तप नहीं' संतोष से बढ़कर सुख नहीं, तृष्णा से बड़ी व्याधि नहीं और दया समान धर्म नहीं।

आचार्य चाणक्य महाराज ने आगे फिर कहा है कि संतोष से जो सुख है वह धन के पीछे दौड़ने वालों को नहीं है–

सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च।
न च तद्धन लुब्धानामित इचेतश्च धावताम् ॥

सन्तोष रूपि अमृत से तृप्त हुए लोगों को जो सुख शांन्ति है वह धन के पीछे भागने वालों को कहां–

महर्षि वेद व्यास जी भी लिखते हैं–

यच्च काम सुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

संसार में जो भोगों का सुख है और बड़े से बड़े जो सुख हैं वे तृष्णा छोड़ने पर जो सुख मिलता है उसके सोलहवी कला के भी समान नहीं है।

योगीराज पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं—

"सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः"

सन्तोष से बढ़कर संसार में कोई सुख नहीं,

कबीर जी ने भी लिखा है—

गोधन गज धन वाजि धन और रत्न धन खान।
जब आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान ॥

सन्तोप धारण करने से पूर्व मनुष्य सुख के पीछे भाग रहा था, परन्तु इसे सुख हाथ नहीं आरहा था। अब सन्तोष के आने पर सब सुख अपने आप प्राप्त हो गया है। वह माला माल हो जाता है। मनुष्य धन से माला माल नहीं होता।

विद्वानों ने लिखा है—

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
परितुष्टेतु संसारे को दरिद्रः को धनवान्॥

जिसकी तृष्णा विशाल है वह दरिद्र है। सन्तुष्ट होने पर कौन दरिद्र है कौन धनवान है ?

किसी ने ठीक ही कहा है—

चाह गई चिन्ता मिटी मनवा वेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए वे शाहन पति शाह॥

सन्तोप का धन वडा विचित्र है। एक महात्मा लंगोटी लगाये जंगल में वैठा है, उनके पास न धन है न महल परन्तु वडे-वडे राजा महा-राजा उसके चरण छू रहे हैं। ये सन्तोष के धनी महात्मा राजाओं से भी बढ़ कर हैं स्वामी सर्वदानन्द जी कहा करते थे—

ए हुमा पेशे फकीरी सलतनत क्या माल है॥
बादशाह आते हैं पापोस्त गदा के वास्ते॥

एक महात्मा के विषय में सुनते हैं। महात्मा जंगल में तपस्या कर रहा था। सम्राट सिकन्दर को पता लगा तो अपने सैनिकों को एक सहस्त्र मुद्रा देकर महात्मा के पास भेजा। महात्मा बोला—जाओ यह धन किसी कंगले को दे देना। सैनिकों ने कहा महाराज आप से कंगला कौन होगा ? महात्मा बोला, "हम गरीब नहीं है हमारे पास तो रसायन है हम पत्थरों को लोहे को स्वर्ण बना लेते हैं यदि राजा को कुछ धन चाहिए तो हमारे पास,

भेज देना'' सैनिकों ने यह सन्देश सम्राट के सामने रखा। सिकन्दर स्वयं धन लेने के लिये महात्मा के पास जाता है। महात्मा ने सिकन्दर को बतलाया कि सन्तोष ही वह रसायन है जिस के मिलने पर मनुष्य पूर्ण धनवान बन जाता है, और जब तक तृष्णा है– 'मनुष्य निर्धन बना रहता है।''

सन्तोष के विना सुख नहीं। सारा संसार सन्तोष के पाठ से ही स्वर्ग बन सकता है।

कवि के ये वचन कितने सार गर्भित हैं—

सन्तोषः परमं लाभः सन्तोषः परमं धनम्।
सन्तोषः परमं चायुः सन्तोषः परमं सुखम्॥

सन्तोष परम लाभ है– सन्तोष परम धन है, सन्तोष ही परम आयु है, सन्तोष ही परम सुख है।

तपः

तप सारी साधना का मूल है संसार का कोई कार्य सफल नहीं होता तप से कठिन से कठिन कार्य किये जा सकते हैं, सारे पापों को नष्ट किया जाता है। परमात्मा भी तप से ही जाना जाता है। तप की शास्त्रों में विशेष व्याख्या की है। मनु महाराज लिखते हैं।

तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।
तपो मध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेद दर्शिभिः॥

॥ मनु० ११। २३५॥

अर्थः—वेद विज्ञानी विद्वानों ने इस सँसार के देव और मनुष्यों के सुख के मूल मध्य और अन्त को तप ही बताया है। अर्थात तप के विना सुख नहीं मिलता। आगे लिखते हैं—

ऋषयः संयतात्मानः फल मूलानिलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्य स चराचरम्॥

॥ ११। २३७॥

अर्थः—फल कन्द मूल, वायु भक्षण करने वाले मन इन्द्रियों को संयम में रखने वाले ऋषि तप से ही त्रिलोकी के चर और अचर को देखते हैं। आगे लिखते हैं:—

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्य कारिणः।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्विषात्ततः॥

अर्थः—महापात की और शेष पापों को करने वाले पात की लोभ तीव्र तप के द्वारा पाप से छुट जाते हैं।

यद्दुतरं यद्दरपं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

॥ ११। २३६॥

अर्थः—जो दुस्तर हैं जो दुःख से पाने योग्य है, जो दुर्गम है, जो दुष्कर है, वह सव तप के द्वारा साध्य है। तप दुर्लंध्य है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में तप की महिमा का वर्णन मिलता है। भृगु मुनि अपने पिता वरुण के पास गये और ब्रह्म की प्राप्ति के उपदेश के लिए प्रार्थना की, तव वरुण ऋषि ने उपदेश दिया। "तपसाब्रह्म विजिज्ञासव।

तपो ब्रह्मेति । "तप से ब्रह्म को जानो, तप ही ब्रह्म है" इस आदेश को पाकर भृगु ने तप किया और ब्रह्म की । प्राप्ति की शान्ति पर्व महाभारत में तप की महिमा इस प्रकार है ।

यथा आम घटे न किमपि स्थातुं शक्यते ।
तथैवं तप सेवनं विना प्रभो ऐश्वर्यंन्न लभते ॥

अर्थः—जिस प्रकार कच्चे घड़े में कुछ नहीं ठहर सकता उसी प्रकार तप से तपे बिना कुछ भी ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता,

अग्नि से तपाने पर जैसे घड़े में सब चीजें रखी जा सकती हैं, उसी प्रकार तप रुपि भट्टी में तपने पर मनुष्य में सब सामर्थ्य समा जाता है ।

वेद भी तप की महिमा गा रहा है ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणिपर्य्येपि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्नतदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तःतत्समाशत ॥

॥ ऋ० ६ । ८३ । १ ॥

अर्थः—हे ज्ञान के स्वामिन् ! तेरा पवित्र स्वरुप सर्वत्र फैला हुआ है । तूं सर्वशक्तिमान् शरीरों को सब ओर से पूर्णतया व्याप्त कर रहा है तेरे आनन्द को तप शून्य नहीं प्राप्त कर सकता । किन्तु परिपक्व महात्मा उस आनन्द को धारण करते हुए ही भली प्रकार प्राप्त करते हैं ।

परमात्मा का आनन्द सर्वत्र फैला हुआ है, बाहर की क्या बात ? वह तो हमारे अंङ्ग २ में भी विद्यमान है । वह आनन्दमय है– उसका आनन्द भी सभी स्थानों पर है परन्तु जिसने तप की अग्नि में शरीर को तपाया नहीं वह उस आनन्द के रस को प्राप्त नहीं कर सकता ।

अथर्ववेद में साफ २ लिखा है कि ऋषि लोग तप के द्वारा संसार का कल्याण करने में समर्थ होते हैं और मुक्ति के आनन्द को प्राप्त करने में सफल होते हैं:—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षा मुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं वलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप संनमन्तु॥

अ० १६।४१।१॥

अर्थ:— संसार का कल्याण करने की इच्छा से ऋषियों ने सब से पहले तप और दीक्षा को धारण किया। तप और दीक्षा को धारण करके वे सुख को प्राप्त हो गये। इसके वाद राष्ट्र-वल, ओज उत्पन्न हुआ। ऐसे इन ऋषियों को जिनके कारण से राष्ट्र का निर्माण हुआ है, राष्ट्र के अन्दर वल ओज का संचार हुआ है, सबको नमस्कार करो। या ऐसे राष्ट्र के लिये जो ऋषियों के द्वारा निर्मित हुआ है– तन-मन-धन आदि सर्व प्रकार की वलि अर्पित करो।"

इस मन्त्र के द्वारा भगवान ने कई वहुत ही उच्च कोटि के रहस्यों का निर्देश कर दिया है। जैसे:—

१- ऋषि वनने का क्या उपाय है ?
२- संसार का कल्याण कौन कर सकते हैं ?
३- रष्ट्र के प्रति राष्ट्र वासियों का क्या कर्त्तव्य है ?

ऋषि मुनि सब वनना चाहते हैं कौन अपनी उन्नति नहीं चाहता ? कौन महापुरुष नहीं वनना चाहता ? सभी चाहते हैं हम ऋषि वन जायें और मुक्ति प्राप्त कर जायें। फिर ऋषि वनने के लिये कुछ करना पड़ता है। अपने आप ऋषि नहीं वना जाता। केवल चाहने से कोई कार्य नहीं हो जाता। ऋषि वमने के लिये इस मन्त्र में नुस्खा लिखा है। ऋषि वनने के दो साधन यहाँ प्रतिपादित किये गये हैं। पहला सावन तप, दूसरा दीक्षा। तप और दीक्षा के

द्वारा साधारण व्यक्ति भी ऋषि बन जाता है। तप और दीक्षा साधारण चीजें नहीं हैं। बहुत मार्के की चीजें हैं। इसी प्रकरण में हम आपको यह बतायेंगे कि तप क्या है? दूसरी यह बात मन्त्र में कही गई है कि संसार का कल्याण ऋषि किया करते हैं। ऋषि का लक्षण भी यास्काचार्य जी महाराज ने निरुक्त में यही लिखा है कि साक्षात्कृत् धर्माणो ऋषियों बभूवुः तेऽवरेभ्योऽ साक्षात्कृत्-धर्मेभ्यरुपदेशेन मंत्रान् संप्रादुः। ऋषि वे होते हैं जो पहले स्वयं वेदों का और स्वधर्म का साक्षात्कार कर लेते हैं, और पुनः संसार को साक्षात्कार कराते हैं। उपमन्यु ऋषि ने भी यही बात कही है– ऋषिः कस्मात्? ऋषि दर्शनात् स्तोमान् ददर्श इति॥ ऋषि कौन है? वेद मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाले को ऋषि कहते है। वास्तव में ऋषि ही सर्वप्रथम आत्मा–परमात्मा वेदों का साक्षात्कार करते हैं और फिर संसार में इस धर्म को प्रसारित करते हैं। इसी धर्म से संसार का कल्याण हो जाता है परन्तु आज.कल लोग वेद पढ़े बिना ही योगाभ्यास किये बिना ही आत्मा परमात्मा को जाने बिना ही ऋषि बने बैठे हैं। आजकल ऐसे ही गुरु घण्टाल हैं जो वेद का एक मन्त्र भी नहीं जानते और ऋषि बने हुए है। अपने नाम के पीछे ऋषि लगाते हैं। सच्च पूछो तो ऐसे ही गुरुओं ने धर्म का विनाश किया है आजकल गुरु सब बनना चाहते हैं परन्तु गुरु कैसे बना जाता है, इस पर कोई विचार नहीं करता आज गुरुओं की बाढ़ आ गई हैं। इतने चेले नहीं जितने गुरु हैं। आज ऋषियों के सन्देशों को फैलाने की चिन्ता नहीं–गुरु बनने की चिन्ता है, स्वयं को ऋषि कहलवाने का शौक है। मेरे देश में गुरुडम का प्रचार है। चेला चेली मूंडने की कुप्रथा चल रही है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध तो केवल आचार्य और ब्रह्मचारी का गुरुकुल में विद्याध्ययन करते हैं होता है। परन्तु आजकल के गुरु बन्द कमरों में, कान में कोई अन्ट सन्ट वाक्य जिस की इन पाखण्डियों ने मन्त्र संज्ञा रख रखी है फूंक देते हैं और चेले चेलियां बना लेते है। मन्त्र देने से पहले अपने चेली व चेले को यह भी कह देते हैं कि इसे किसी को बताना मत, नहीं तो तुम्हारा नाश हो जायेगा। पहली तो यह बात है कि मंत्र कान

में और वन्द कमरों में नहीं दिया जाता। मन्त्र तो यज्ञ वेदी पर या सब के सामने दिया जाता है। परन्तु ये सब से पृथक इसलिये मन्त्र देते हैं कि कभी इनकी पोल न खुल जाये। इन्हें मन्त्र तो आते ही नहीं। कोई तत्वमस्मि, कोई अहं ब्रह्मास्मि, कोई कुछ कोई कुछ मन चाहे वाक्य दे देते हैं। ये सब ठग व लुटेरे हैं। तुम्हें पता नहीं कि ये कान में क्या मन्त्र फूंकते हैं ? ये कहते हैं:—

"काना बादी कुर तू चेला मै गुर ।
सवा रुपया इधर धर, फिर डूब चाहे तर ।।

जो मुलफा-भांग, चरस, तम्बाकू, अफीम, शराब आदि का नशा करता है। डोरे धागे, तवीज देता हो, सट्टा बीजक बतलाता हो और मूर्ति पूजा का ढोंग रचता हो वह पाखण्डी है और गुरु बनने योग्य नहीं है। इनसे बचकर रहो। इन के मन्त्र ये हैं—

लगे दम मिटे गम, कमायेगी दुनियां खायेंगे हम। [१]
चिलम-चमेली फूंक दुश्मन की हवेली। [२]
चिलम सुरखी-खबरला धुरः की। [३]
राम-नाम जपना—पराया माल अपना। [४]

ये सब वेद विरोधी हैं। इन्होंने ही देश का वेड़ा गर्क किया है। इन लोगों को एक भी मन्त्र नहीं आता और गुरु बनना चाहते हैं। ऐसे ही एक खाकी जी थे उनका एक दिन ऐसे शास्त्री जी से शास्त्रार्थ हो गया। शास्त्री जी खाकी को बोले "अच्छा बताओ वेद कितने हैं ?" खाकी जी— "पहले तुम बताओ बाद में हम बतायेंगे" शास्त्री जी "वेद चार होते हैं— १—ऋग्वेद २—यजुर्वेद ३—सामवेद ४—अथर्ववेद ।"

खाकी जी "वेद चार नहीं होते। वेद आठ होते हैं—

१–ऋग्वेद २–ऋग्वेदनी ३–यजुर्वेद ४–यजुर्वेदनी ५–सामवेद ६–सामवेदनी ७–अथर्ववेद ८–अथर्ववेद वेदनी"।

यह बात एक दूसरे गुरु घण्डाल भी सुन रहे थे। वे कहने लगे खाकी जी वेद आठ नहीं होते। वेद होते हैं सोलह।

१–ऋग्वेद २–ऋग्वेद वेदनी ३–वेटा ४–वेटी साथ ५–यजुर्वेद ६–यजुर्वेद वेदनी ७–बेटा ८–वेटी साथ, ९–सामवेद १०–सामवेद वेदनी ११–वेटा १२–वेटी साथ, १३–अथर्व वेद १४–अथर्व वेदनी १५–वेटा १६–वेटी साथ।

शास्त्री जी बोले धन्य हो महाराज तुम्हारे जैसे गुरु हों तो फिर घाटा ही क्या? परन्तु इनको ऋषि नहीं कह सकते। ऋषि वे ही होते हैं जो वेदों का साक्षात् करके संसार में फैलाते हैं और संसार का कल्याण करते हैं।

तीसरी बात है ऋषियों ने जिस राष्ट्र को अगाध तप और साधना के द्वारा आदर्श बनाया है-उसके प्रति हमारा भी यह कर्त्तव्य है कि हम सारी शक्ति लगाकर और अपने प्राणों की आहुति देकर उसकी रक्षा करें। राष्ट्र के अन्दर बुराई उस समय आती है जब अच्छाई का प्रचार करने वाले आलसी और प्रमादी हो जाते हैं। जब तक राष्ट्र के लिये बलिदान देने वाले रहते हैं राष्ट्र का पतन नहीं होता। दूसरा अर्थ यह भी है कि जिन महापुरुषों ने देश और जाति धर्म की रक्षा की है उनके प्रति हम श्रद्धा के भाव रखें। जो व्यक्ति अपने महापुरुषों का कृतज्ञ नहीं रहता है और अपने को ही सब कुछ मान बैठता है वह अधोगति को प्राप्त हो जाता है। हम चाहे कुछ भी बन जायें परन्तु ऋषियों के चरणों की धूली भी नहीं हैं। मनुष्य काले अक्षर सीखते ही गुरु बनना चाहता है और ऋषियों का तिरष्कार करने पर तुल जाता है। परन्तु यह कृतघ्नता है। वेद इस का विरोध करता है और प्रेरणा करता है कि हमें ऋषियों का ऋण मानना होगा।

आपने देख लिया कि तप के द्वारा साधारण व्यक्ति ऋषि बन जाते हैं और मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं और संसार का कल्याण करने में समर्थ हो जाते हैं।

मुण्डकोपनिषद में तप की महिमा यूं लिखी है—

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्ति अरण्येशान्ता विद्वांसो
भैक्ष चर्यां चरान्तः।
सूर्य द्वारेण ते विरजा प्रयान्ति,
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥

अर्थः—जो मुनि जन तप और श्रद्धा धारण करके वन में वास करते हैं, जो शान्त विद्वान भिक्षा करके निर्वाह करते हैं, वे सभी निष्पाप होकर सूर्य के द्वार से प्राण छोड़कर ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेते हैं।

शास्त्रों में तप की बहुत अधिक महिमा लिखी है—परन्तु तप किसे कहते हैं इस बात को लोग नहीं जानते इस कारण से वे सब तप के लाभों से वंचित रह जाते हैं।

तप के विषय में बड़ा भ्रम है। कोई कोई तो महीनों पैरों पर खड़ा रहता है, पैर सूज जाते हैं, पैरों में खून उतर आता है, टट्टी भी खड़ा खड़ा करता है और कहता है मैं तप कर रहा हूं। कोई शीतकाल में कड़कती सर्दी पड़ती है—ठण्डे जल में खड़ा है, शरीर जड़ बना दिया है, इसे ही तप समझे हुए हैं। कोई पांच धूनों की अग्नि में बैठा है और कह रहा है मैं पञ्चाग्नि तप कर रहा हूं।

शास्त्रों में इन तपों का कहीं पर भी वर्णन नहीं आया। ये पापों को दूर करने के लिये प्रायश्चित तो हो सकते हैं। परन्तु आजकल लोगों ने यह ढोंग बना लिया है और ऐसा करा के पैसा कमाते हैं और प्रसिद्धि प्राप्त करने का दुष्प्रयत्न करते हैं।

महाभारत शान्ति पर्व में पांच धूनों के तप का निषेध किया है और वहां समझाया गया है कि पंचाग्नि तप क्या है ?

चतुर्णां ज्वलतां मध्ये यो नरः सूर्य पंचमः।
तपस्तपति कौन्तेय न तत्पंचतपः स्मृतम् ॥

हे कुन्ति पुत्र ! जो चार अग्नियों के बीच में बैठता जाता है और सूर्य को पांचवी अग्नि बनाकर तप तपता है, वह तंचाग्नि तप नहीं है। पञ्चाग्नि तप क्या है ? देखिये आगे लिखा है:—

पंचाना मन्द्रियाग्निनां विषयेन्धन चारिणाम्।
तेषां तिष्ठति यो मध्ये तद्वै पंचतपः स्मृतम् ॥

पांच ज्ञानेन्द्रियां जो विषयों में विचरण करती हैं इनके बीच में जो संयमी रहता है वह पंचाग्नितप कर रहा है।

पांच इन्द्रियां ही पांच अग्नियां है और इनके शब्द—स्पर्श, रुप, रस गन्ध पांच विषय ही इन्धन हैं। जब ये विषय रुपि इन्धन इन इन्द्रियों की अग्नियों में पड़ता है तो ज्वाला भड़कती है और आत्मा दुःखाग्नि में—झुलस जाता है। इस अग्नि को जो शान्त रखता है वही तपस्वी है। तप का लक्षण करते हुए वेद व्यास ऋषि योगदर्शन में लिखते हैं:—

"तपो द्वन्द्व सहनम्"

द्वन्द्व सहन करना तप है। द्वन्द्वों का अर्थ है भूख-प्यास, शीत-उष्ण, लाभ-हानि, मान-अपमान, दुःख-सुख, आदि में समान है। इनको सहन करने का नाम ही द्वन्द्व सहन है और इसे ही तप कहते हैं।

प्रत्येक कार्य को करत हुए मनुष्य के मार्ग में अनेक बाधाए आती हैं। कभी गर्मी और कभी सर्दी। सुख, दुख, लाभ, हानि, मान और अपमान

आदि अनेक विघ्न मनुष्य का मार्ग रोक कर खड़े हो जाते हैं। जो व्यक्ति इन बाधाओं को चीरते हुए आगे बढ़ता रहता है और अपने काम को सफल कर लेता है—यही तप है। तप का भाव यही है कि अपने शुभ कर्मों के करने में जो विघ्न आते हैं उनको सहर्ष सहन करते हुए अपने कर्त्तव्य को न छोड़े और अपने कार्य को सफल कर ले। यक्ष के पूछने पर युधिस्टर जी ने भी यही उत्तर दिया था—

"तपः स्वधर्मे वर्त्तित्वम्"

अपने कर्त्तव्य कर्म को करते रहना ही तप है। ऋषियों के जीवन में यह देखने को मिलता है कि उन्होंने जीवन में इस तप को तप करके ही सच्च पदवी को पाया था।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी के जीवन की एक घटना लिखता हूं। महर्षि स्वामी दयानन्द वर्षों एक कोपीन में रहे। सर्दी हो गर्मी हो कभी कुछ प्रवाह नहीं करते थे। कर्म वास की घटना है वे एक बार पोह मास की कड़कती शीत में एक कोपीन लगाकर गंगा के तट पर रेती में योग समाधि लगाया करते थे। ठण्डी २ शरीर को जड़ बना देने वाली वायु चलती थी, पाला पड़ता था परन्तु उन्हें इधर कुछ भी ध्यान न था। एक दिन ठाकुर गोपालसिंह जी ने सोचा कि स्वामी जी को रात्रि में जाकर देखना चाहिये कि स्वामी जी रात्रि में कैसे निर्वाह करते हैं। रात्रि में तो कुछ कम्बल आदि या पुराल आदि ओढ़ते ही होंगे। ठाकुर साहब अपने चार साथियों सहित प्रातः दो बजे गंगा के तट पर पहुंच गये। वहां क्या देखते हैं कि स्वामी जी एक कोपीन में गंगा की रेती के ऊपर समाधि लगाये बैठे हैं। चेहरे पर मस्ती है और शीत का कोई प्रभाव नहीं है। यह सब कुछ देखकर ठाकुर जी आश्चर्य चकित हो गये। सोचा कि जब स्वामी जी समाधि से उठेंगे तो इसका कारण पूछेंगे। कई घण्टे बाद

स्वामी जी ने समाधि खोली। ठाकुर साहब और उनके साथी स्वामी जी के चरणों में नतमस्तक हो गये और बोले- "महाराज बहुत देर से हम देख रहे हैं। आप एक लंगोटी में आनन्द के साथ समाधि में बैठे हुए हैं। आज इतनी सर्दी पड़ रही है ठण्डी वायु चल रही है, हम इतने गर्म कपड़े पहने हुए हैं फिर भी दांत किड़-किड़ कर रहे हैं-परन्तु आपको शीत का पता भी नहीं। इसका क्या कारण है ? ,,स्वामी जी मुस्कराय और बोले "ठाकुर साहब कपड़ों से सर्दी नहीं भागती। यदि कपड़ों से सर्दी दूर होती तो आप की ही हो जाती। परन्तु कपड़े पहनने के बाद भी आप की शीत दूर नहीं हुई। यह इस बात का प्रमाण है कि कपड़ों से सर्दी दूर नहीं होती। सर्दी अग्नि से दूर होती है।,, इस बात को सुनकर ठाकुर साहब बोल उठे "महाराज ! आपके पास तो अग्नि भी नहीं है।,, स्वामी जी बोले "कौन कहता है मेरे पास अग्नि नहीं है। मेरे पास बहुत अग्नि है। यदि आप कहो तो अभी दिखा देता हूं। ठाकुर साहब और उनके साथी बाले "महाराज ! दिखादो" स्वामी जी ने अग्निदीपक प्रणायाम किया और मस्तक से पसीने की धारा बह निकली। दर्शक देख कर मुग्ध हो गये। ठाकुर साहब बोले। "स्वामी जी महाराज। हमने जीवन में ऐसा महात्मा नहीं देखा। आप पूर्ण योगीराज हैं। आप में ब्रह्मचर्य और योग की अग्नि प्रदीप्त हो रही है।

सर्दी गर्मी के सहन करने से शरीर वज्र के समान हो जाता है। जो व्यक्ति सर्दी और गर्मी को सहन नहीं कर सकता वह ऋषि बनने की कहाँ बाट देख रहा है ? इस प्रकार लाभ-हानि में समान रहना तप है। देखने में यह आता है कि लाभ ही में मनुष्य फूलकर कुप्पा हो जाता है-परन्तु कुछ हानि होने पर हर्ट फेल होने को हो जाता है। कितना ही नुकसान हो जाये परन्तु धर्म के कार्य को न छोड़ें, और कितना ही प्रलोभन सामने हो तब भी अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित न हों-वही देवता और महापुरुष बनता है वही तपस्वी कहलाता है।

भूख-प्यास, सर्दी गर्मी, सुख-दु:ख, लाभ-हानि आदि को जीतना सरल है परन्तु मान अपमान को जीतना सरल नहीं है। परन्तु तपस्वी बनने के लिये यह कार्य भी करना ही पड़ेगा। वही महान पुरुष होता है जो मान अपमान को जीत लेता है। क्षत्रिय की परीक्षा युद्ध के मैदान में होती है-परन्तु तपस्वी की परीक्षा अपमान होने पर होती है। जिस क्षत्रिय ने जीवन में अधिक युद्ध किये हों और अपने शरीर में अधिक घाव खाय हों वही वीर शिरोमणि कहलाता है। राणा सांगा को इतिहास में सबसे बड़ा हीरो क्यों कहा गया ? इस लिए कि उसके शरीर पर सबसे अधिक घाव लगे थे। युद्ध में लड़ते-लड़ते उसकी एक आंख एक कान एक भुजा और पूरा भाग नष्ट हो गया था। उसके शरीर पर अस्सी (८०) घाव लगे थे। परन्तु तपस्वी की, ब्राह्मण की परीक्षा गालियों के मैदान में होती है। जिसने जीवन में सबसे अधिक ईंटे खाई हों, पत्थर खाय हों आलोचना सहन की हों और विष के प्याले पिये हों वही सब से बड़ा सन्यासी ऋषि होता है। स्वामी दयानन्द को इतिहास का इस लिये सब से बड़ा ऋषि माना गया कि उन्होंने जीवन में धर्म के लिये सब से अधिक ईंट पत्थर खाय, अपमान सहे, विष के प्याले पिये। सारा संसार विरोधी था ऋषि अकेला था-परन्तु फिर भी टस से मस न हुआ। और विश्व को धर्म के पथ पर लाकर खड़ा कर दिया।

उनके जीवन की एक दो घटना सुनाता हूं। अमृतसर में स्वामी जी भाषण दे रहे थे मूर्ख लोगों ने ईंट और पत्थर की' वर्षा प्रारम्भ करदी। स्वामी जी मुस्कराये और बोले आज जहां मेरे ऊपर पत्थरों की वर्षा हो रही है वहां मेरे अनुयाइयों के ऊपर पुष्पों की वृष्टि हुआ करेगी। भाषण पूरा करके स्वामी जी अपने डेरे पर लौटे तो भक्त लोगों ने आकर कहा' महाराज ! आज तो बहुत बुरा हुआ आपके ऊपर ईंट पत्थर बर्षे। "स्वामी जी बोले" कोई बुरा नहीं हुआ। मेरी अवस्था एक माली के समान है। जब माली अपना बगीचा लगाता है तो उसे अपने सिर पर खाद ढोना पड़ता है और कुछ खाद उसके ऊपर गिर जाता है, फिर ईंटे ढोता है तो ईंटे उसके ऊपर

गिर जाती हैं-परन्तु माली कोई चिन्ता नहीं करता बल्कि माली खुश होता है क्योंकि उसका उद्यान हरयाला भरयाला हो रहा है इसी प्रकार मैंने भी अभी समाज की वाटिका लगाई है, यदि इस की रक्षा करने के लिये मुझे ईंट पत्थर खाने पड़ें तो इस की कोई चिन्ता नहीं बस यह वाटिका सुरक्षित रहनी चाहिए ।

ऐसे लोगों का लगाया गया पौधा क्यों न सरसब्ज होवे। एक और घटना सुनाता हूँ। बरेली की घटना है। कुछ भगत लोग आकर स्वामी जी को बोले कि "महाराज ! बहुत बुरा हो गया। आज एक आदमी को नकली दयानन्द बनाया गया- उस का मुख काला किया गया – उसको गधे पर बिठाया गया। गंदे २ मौहल्लों में उसे घुमाया गया और नारे लगाये गये-दयानन्द मुर्दाबाद-दयानन्द मुर्दाबाद" यह कहकर रोने लगे। स्वामी जी मुस्कराये और बोले "तुम दुःखी क्यों हो गये। यह तो जो कुछ हुआ अच्छा हुआ। वह नकली दयानन्द था। 'अच्छा हुआ उसका मुंह काला हो गया। नकली दयानन्द का मुख तो काला होना ही चाहिये था। अच्छा हुआ उसका हो गया। हम तो जब जाने कोई असली दयानन्द का मुख काला करके दिखायें। भक्तों ने जब यह बात सुनी तो चरणों में लोट पोट हो गये और बोल उठे कि ऐसा ऋषि मिलना दुर्लभ है। यदि दूसरा कोई व्यक्ति होता तो आपे से बाहर हो जाता। परन्तु वह ऋषि था, तपस्वी था। सन्त महात्माओं के जीवन इसी प्रकार की सहनशीलता से भरे मिलते हैं। महात्मा सुकरात के जीवन की घटना है कि एक बार महात्मा सुकरात सत्संग में बैठे हुए थे। उनकी धर्म पत्नि क्रोधित होकर वहाँ पहुंची और उनको डांटने डपटने लगी। बोली "तुम सारे समय सत्संगों में बर्बाद कर दो। घर के काम का ध्यान मत करो। इससे तुम्हारा काम चल जायेगा।" इस कर्कश वाणी को सुनकर भी महात्मा जी शान्त बैठे रहे। उसने सोचा यह ऐसे मानने वाला नहीं है। समीप जाकर मुख में पानी भर कर लाई और आकर जोर से महात्मा जी के ऊपर कुल्ला कर दिया। कुल्ला होने पर सन्त सुकरात जी हंसे और बोले "मैं

भी सोच रहा था जो बादल इतनी देर से गरज रहा है वह बरसेगा भी जरुर। अच्छा हुआ बादल बरस गया। यह कहकर बात टाल दी। इसको कहते हैं अपमान का जीतना।

जिस व्यक्ति को भूख,–प्यास, शीत–उष्ण, सुख दुख, लाभ–हानि मान और अपमान पथ भ्रष्ट नहीं कर सकते वह तपस्वी है।

गीता में भी शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तपों का वर्णन किया है। शारीरिक तप यह है:—

देव द्विज गुरू प्राज्ञ पूजनं शौचार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शरीरं तप उच्यते ॥१७।१४॥

बुद्धिमानों, द्विजों, गुरू और विद्वानों की पूजा शारीरिक पवित्रता, आर्जवम् ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन यह पाँच प्रकार का शारीरिक तप है।

वाचिक तप यह है:—

अनुद्वेग करं वाक्यं सत्य प्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्गमयं तप उच्यते॥

कठोरता रहित वाक्य, सत्य, प्रिय, हितकारी सद ग्रन्थों का अध्ययन करना वाङ्गमय तप कहलाता है।

मानसिक तप यह है:—

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

अर्थः—मनकी प्रसन्नता स्वभाविक सौम्यता, मौन विषयों से मन को रोकना, नेक नीति से परस्पर वर्ताव यह सब मानसिक तप कहलाता है।

योगीराज़ पतञ्जलि महाराज तप का फल लिखते हैं:—

"कामेन्द्रिय सिद्धिर शुद्धि क्षयात् तपसः"

अर्थ—तप से सब अशुद्धियों का नाश हो जाता हैं। और काया और सब इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती हैं।

तप वह भट्टी है जिसमें तपने पर इन्द्रियों और मन के सब मल नष्ट हो जाते है। मनुष्य कुन्दन बन जाता है।

आज मेरे राष्ट्र को तप की वढ़ी भारी आवश्यकता है। देश से तप की भावना शिक्षा लुप्त होती जा रही। श्रृंगार का सर्वत्र बाजार गर्म है। बाल वढाना, क्रीम पाऊडर, सैंट स्नो लगाना, टेरालीन टेरीकोट के रेंडीमेड वूसर्ट पहनना,-पेंट पहनना, टाई बांधना, नेलोन की जुरावे पहनना, रीलेक्स की घड़ी बांधना, लेदर शूज पहनना आदि अनेक प्रकार के फैशन में लोग बुरी तरह फंस चुके हैं। विद्यार्थी वर्ग भी जिसको कठोर तपस्या का आचरण करना चाहिये था, फैशन में पागल हो गया है। "सरलता सदाचार की जननी है और श्रृंगार व्यभिचार का दूत है" का पाठ सब भूल चुके हैं। विद्यार्थियों के लिए विशेष रुप से ऋषियों ने तेल फुलेल लगाना जूता पहना, छत्र धारण करना, चारपाई पर सोना नाचना गाना मना किया है। परन्तु आज कौन सा नियम है जिसका आचरण किया जाता है। सब नियमों पर कुठारापात हो गया है। सिनेमों के नंगे नाचो में तफरी करना आजकल के लोगों का एक मात्र कर्म रह गया है। उलटे २ कर्म करना ही इनका गौरव हो गया है। पतन

को उत्थान मान बैठे हैं। अधोगति को प्रगति समझ रहे हैं। इनकी दृष्टि में बीड़ी–सिगरेट पीना सभ्यता है न पीना असभ्यता है। प्रातः ८ बजे उठना बड़पन है और ४ बजे उठना मूर्खता है, सरलता जंगली पन और फैशन-विकास है। पान खाना, अण्डे मांस खाना, शराब पीना, चाय पीना, कोका कोला पीना, खड़े २ पेशाब करना, खड़े २ खाना प्रगति शीलता है। दूध पीना, घी खाना, तक्र पीना बैठकर खाना गंवार पन है। अखाड़े में कुश्ती लड़ना योगासन-प्राणायाम करना मूर्खता है। और ताश खेलना, जूआ खेलना बुद्धिमानी है। सत्संग में, जाना लो स्टेण्डर्ड है; क्लबों में, थियेटरों में, डांसों में जाना हाई स्टेण्डर्ड है।

आज के ये लोग मुंह बनाकर कहते हैं कि क्या रखा है ईश्वर भजन में क्या रखा है संस्कृत पढने में, क्या रखा है वेद पढने में, क्या रखा है धर्म में, सन्ध्या हवन में क्या रखा है. व्ययाम में क्या रखा है, जनेऊ में क्या रखा है, चोटी में क्या रखा है, लंगोट बांधने में क्या रखा हैं, सत्संग में क्या रखा है, क्या रखा है चार बजे उठने में। ये सब ढोंग हैं। देखो ढोंग की परिभाषा। इन्हें अच्छे कार्य भी सब ढोंग लगते हैं। आज के लोगों के लिये अण्डे म स खाने में, सिनेमा, उपन्यास, फैशन करने में ही सब कुछ रखा है। आज तप कौन करना चाहता है। सब आराम से पढना चाहते हैं वज्र के समान शरीर आज पसन्द नहीं, आज के लोग मोमवत्ती जैसी अंगुलियों को रुई जैसे कोमल शरीर को पसन्द करते हैं। भूमि पर–तखत पर सोना पसन्द नहीं करते मोटे २ गद्दों पर सोना पसन्द है। गर्मी की लूओ को सहना पसन्द

नहीं–पंखे और कूलर पसन्द हैं, कड़कती सर्दी पसन्द नहीं–हीटिड रूम पसन्द हैं। यदि दस कदम पैदल चलना पड़े तो चल नहीं सकते। एक फर्लांग भागना पड़े तो भाग नहीं सकते, थोडी देर फावड़ा चलाना पड़े तो चला नहीं सकते। गर्मी सर्दी सहन नहीं कर सकते। थोड़ी सी ठण्डी हवा लगने पर जुकाम को भी नहीं रोक सकते। उठते बैठते अन्धेरी आती है। रोगों ने चारों ओर से घेर रखा है, सूखकर हड्डियों का पिंजर रह गया है। गाल पिचक गये हैं, चेहरे पर मुर्दाई छा गई है, मस्ती के दर्शन भी नहीं होते हैं। शरीर पानी के सांप की तरह पीला पड़ गया है, शरीर में न बल है, न ओज है, ऊपर से कारटून रह गया है यह है आज की सभ्यता। किसी ने ठीक ही लिखा है:—

Our youngman and women have adopted this modern civilization like a giftied purse. It is a gaudy outside but empty inside.

हमारे नवयुवक और नवयुवतियों ने आजकल की सभ्यता को इस प्रकार से धारण किया है। मानो उन्हें इनामी बटवा मिल गया हो। यह बटवा ऊपर से तड़किला और आकर्षक है। परन्तु अन्दर से बिल्कुल खाली है।

आज का नवयुवक जिस समय पूरा शृंगार करके बाजार में अपनी सुन्दरता को दिखाने के लिए चलता है। तो लोग कहते हैं–माडल बहुत बढ़िया है। परन्तु यह माडल ऊपर २ से तो बढ़िया है पर अन्दर से बिल्कुल खाली है अन्दर न बल है–न शक्ति है न सदाचार है।

मैं चुनौति देकर कहना चाहता हूं ये युवक देश को आगे नहीं ले जा सकते हैं। सीमाओं पर देश की रक्षा नहीं कर सकते हैं। यदि हम नहीं

सम्भले और यही सभ्यता लागु रही तो हम पराधीन हो जायेंगे। हमारे देश को लोह पुरुषों की आवश्यकता है। इस देश के नवयुवकों को शृंगार से रोका जाये, और तपस्या के मार्ग पर चलाया जाये। इन्हें केवल बाबू जी न बनाया जायें—इन्हें तपस्वी, त्यागी शक्तिशाली और ब्रह्मचारी बनाया जाये। इसके लिए आवश्यकता है कि शृंगार के सारे सामानों को नष्ट किया जाये। शृंगार युक्त कपड़ों की होली जलाई जाये। सिनेमा, थियेटरों, क्लबों पर बम्ब डाले जायें। चरित्र नष्ट करने वाले बाबू जी बनाने वाले इन स्कूलों कालेजों को गुरुकुल प्रणाली पर चलाया जाये। तप से ही राष्ट्र की रक्षा सम्भव है अतः राष्ट्र में तप की भावनाओं का प्रसार किया जाये।

दुःख से लिखना पड़ता है कि जिन योगियों के लिये तप सर्वस्व है, वे भी ठाठ बाट में लीन हैं। सारे शाही सामान इकट्ठे किये हुए हैं। राजसिक भोग भोगे जा रहे हैं। सोफे सैट कमरे में शोभा पा रहे हैं, बिजली के ग्लोबों की सजावट चका-चौंध कर रही है। जहां यज्ञकुण्ड और समिधाएं चाहिये थीं वहां भांग की कुण्डी रखी हुई है, जहां वेद शास्त्र होने चाहिये थे वहां रेडियो रखे हैं, जहां पादुका होनी चाहिये थी वहां कुर्म के जूते रखे हैं। जहां कोपीन और चद्दर सूखनी चाहिये थी वहां सिलक के कपड़े सुख रहें हैं। जहाँ योग पीठिका होनी चाहिये थी वहां आराम कुर्सियां रखी हैं। जहां पर्ण कुटीरें होनी चाहिए थीं वहा कोठियां बनी खड़ी है, जहां गायें होनी चाहिये थीं वहां कुत्ते कुत्तिया पल रही हैं, जहां काष्ठपटल होने चाहिये थे वहीं नीवार के पलंगों पर गद्दे बिछे हुए हैं। जहां चन्द्रमा दीपक होता था वहां बिजली के रौड़ जल रहे हैं, जहां वायुदेव पंखे का कार्य करता था-वहां बिजली के पंखे चल रहे हैं। और जहां

वैराग्य ही सब कुछ था वहां भोगों की प्रधानता है।

इस मॉडरन संस्कृति के कारण युग कैसा बदल गया, आश्रम और गुरुकुलों में जहां वेदारम्भ संस्कार होना चाहिए था वहां गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन और जात कर्म संस्कार हो रहे हैं। ब्रह्मचारियों और योगियों का हाल यह है कि किसी ने पूछा ये बच्चे किसके खेल रहे हैं। तो उत्तर मिला ब्रह्मचारियों के, फिर पूछा यह शोर किन में है?– उत्तर मिला मौनियों में, फिर श्रेणी [illegible] की जा रही है? उत्तर मिला वैरागियों की, फिर पूछा ये महल किन के खड़े हैं?– उत्तर मिला त्यागियों के फिर पूछा गया ये ठाठ-बाट किसके हैं? तो उत्तर मिला योगियों के।

मैं कहना चाहता हूं ये आचरण योगियों को साधकों को शोभा नहीं देते हैं। इससे योग साधना कलङ्कित होती है। आज के योगियों ने योग को कलङ्कित कर दिया है। योग तप से शोभा देता है। जो तपस्वी नहीं वह योगी नहीं वह भोगी है। ऐसे व्यक्तियों से सावधान रहना चाहिए।

इति तप विषय

स्वाध्याय

स्वाध्याय साधना का स्तम्भ है। योगीराज पतञ्जलि महाराज जी लिखते हैं कि:—

स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः
॥ योग- २ । ३७ ॥

अर्थः— स्वाध्याय से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है,, मनुष्य की बड़ी-२ कामनायें होती हैं वह कभी धनवान बनना चाहता है, कभी योगीराज बनना चाहता है। वह जो कुछ भी बनना चाहता है बन सकता है। वह जो कुछ प्राप्त करना चाहता है वह प्राप्त कर सकता है। यदि वह ब्रह्मचारी बनना चाहता तो बन सकता है, यदि वह ध्यानी बनना चाहता है, तो ध्यानी बन सकता है, यदि वह वैज्ञानिक बनना चाहता है वह वैज्ञानिक बन सकता है। यदि वह प्रभु दर्शन करना चाहता है तो वह प्रभु दर्शन कर सकता है, यदि मुक्ति प्राप्त करना चाहता है तो मुक्ति प्राप्त कर सकता है। ऋषियों ने इसका एक सरल उपाय बतला दिया है। सब कामनाओं को पूर्ण करने का अचूक नुस्खा स्वाध्याय है। स्वाध्याय क्या है? वेद व्यास ऋषि कहते हैं:—

"प्रणवादि पवित्राणां जपः मोक्षशास्त्राणामध्ययनं वा"

ओम का जप और मोक्ष प्राप्ति के शास्त्रों का अध्ययन ही स्वाध्याय है। स्वाध्याय के विषय में आगे वे लिखते हैं:—

स्वाध्यायाद् योगमासीत् योगात्स्वाध्याय मामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥

अर्थः— स्वाध्याय से योग को प्राप्त करें और योग से स्वाध्याय करें। स्वाध्याय और योग के द्वारा परमात्मा की उपलब्धि हो जाती है।

शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय की रोचक व्याख्या की है–

शतपथ ११ । ५ । ६ । १ ।

अब स्वाध्याय की महिमा बतलाते हैं। स्वाध्याय और प्रवचन अत्यन्त प्रिय विषय है। शान्त चित्त से स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति स्वतन्त्रता से अपने कार्य सिद्ध करता है। आनन्द से रहता है। अपने हिताहित का ध्यान रखता है। संयमी, बुद्धिमान और यशस्वी बन जाता है बुद्धि की निर्मलता से स्वाध्याय शील व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। सच्चा ब्राह्मणत्व, यथोचित आचार व्यवहारवान और लोगों का विश्वास पात्र बन जाता है, सब ओर से उसे यथेष्ट सम्मान धनादि प्राप्त होते हैं।

आगे लिखते हैं:—

"यो ह वै के च श्रमाः। इमे द्यावा पृथिवी
अन्तरेण स्वाध्यायो है व तेषां परमता–
काष्ठाय एवं विद्वान स्वाध्यायमधीते
तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥२॥

अर्थः— संसार में जितने भी कार्य हैं, स्वाध्याय उन सब से श्रेष्ठ है। कठिन कार्य है, ऐसा जानकर जो स्वाध्याय करता है वह तत्व को जान लेता है। अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

पंचतन्त्र में भी स्वाध्याय की व्याख्या बहुत सुन्दर की है:—

काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन च॥

बुद्धिमानों का काल तो स्वाध्याय करने में जाता है और मूर्खों का समय तास चौपड़ आदि व्यसनों में, निद्रा और कलह मे जाता है ।,,

संसार विषवृक्षस्य द्वे एव रसवत्फले ।
काव्यामृत रसस्वादः संगमः सुजनैः सह ॥

अर्थः— यह संसार विष का वृक्ष है क्योंकि यह दुःखों और शोक से भरा हुआ है । परन्तु इस वृक्ष के दो मीठे फल भी हैं । एक मधुर फल स्वाध्याय और दूसरा सत्संग है ।

और भी कहा है:—

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥

अर्थः— शास्त्र अनेक संशयों को दूर करने वाला, परोक्ष को दिखाने वाला और सब की आँखों के तुल्य हैं । यह जिसके पास नहीं है वह अन्धा ही है ।

मनु महाराज लिखते हैं:—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रै विद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मणीयं क्रियते तनुः ॥

अर्थः— स्वाध्याय से, ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि नियम पालने, होम, ज्ञान,कर्म उपासना, पक्षेष्टयादि यज्ञ सुसन्तानोत्पत्ति, पंच महायज्ञों और अग्निष्टोमादि तथा शिल्प विद्या विज्ञान से यह शरीर ब्राह्मण का शरीर बनाया जाता है ।

आगे लिखते हैं:—

यथा-यथा नरः शास्त्रं समधिगच्छति ;
तथा-यथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥

मनुष्य ज्यों-२ स्वाध्याय करता जाता है वैसे वैसे उसका ज्ञान बढ़ता जाता है ।

जिस समय ब्रह्मचारी गुरुकुल से स्नातक बनता है– उस समय आचार्य अन्तिम उपदेश देता है । यह दीक्षान्त उपदेश यह है:—

"स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।"

स्वाध्याय और प्रवचन से कभी प्रमाद एवं आलस्य न करना ।
ऋग्वेद ८।६७।३१ में स्वाध्याय की महिमा यूं लिखी है:—

पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥

अर्थ:— सब को पवित्र करने वाली ऋषियों द्वारा धारण की गई ऋचाओं को जो धारण करता है वह पवित्र आनन्द रस का आस्वादन करता है ।

स्वाध्याय से मनुष्य विद्वान बन जाता है । वारमौट (अमेरिका) के एक मोची चार्लस सी फ्रास्ट ने अपनी आजीविका के कार्य से प्रतिदिन एक घण्टा निकालकर १० वर्ष तक एक घण्टा गणित के लिये अध्ययन में लगाया । केवल एक घण्टा स्वाध्याय के बल पर वह उच्च कोटि का गणितज्ञ हो गया ।

श्री पं० गुरुदत्त एम० ए० ने सब वैदिक साहित्य को स्वाध्याय के द्वारा ही पढ़ा था । और पाश्चात्य विद्वानों के सभी आक्षेपों का मुहं तोड़ उत्तर दिया था । किसी से पढ़े बिना ही भारी विद्वान बन गये ।

स्वाध्याय से मनुष्य सब बुराइयों से छूट कर कल्याण मार्ग का पथिक हो जाता है । स्वामी सर्वदानन्द जी के जीवन की घटना सुनाता हूं ।

स्वामी सर्वदानन्द जी वेदान्ती साधु थे। और सत्य क्या है और क्या नहीं– इस विषय में पूर्ण निश्चय वान नहीं थे। एक बार वे भ्रमण करते हुए जा रहे थे। मार्ग में रुग्ण हो गये। एक सन्त सेवी आर्य धर्मावलम्बी महाशय ने इनको देख लिया। उन्होंने इनकी खूब सेवा शुश्रूषा की। स्वामी जी ठीक हो गये। जब स्वामी जी चलने लगे तो महाशय जी बोले महाराज! यदि आप स्वीकार करें तो मैं आपको कुछ भेंट करना चाहता हूं।" स्वामी जी बोले "आपने तो पहले ही बड़ी सेवा की है, आपका पहले ही ऋण बहुत है और क्या भेंट करोगे? महाशय जी बड़े श्रद्धालु थे बोले "महाराज! आप की सेवा करना तो गृहस्थियों का कर्त्तव्य है ही, इस में ऋण की कौन सी बात है। सन्त साधुओं को कुछ दक्षिणा भी गृहस्थियों को देनी चाहिए जिससे उनके वस्त्रादि और मार्ग व्यय आदि का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। आप मेरी दक्षिणा भी सहर्ष स्वीकार कीजिये, स्वामी जी मान गये और भगत जी ने ऋषि दयानन्द का अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश रेश्मी कपड़ों में सजाकर भेंट किया और साथ में सवा रुपया दक्षिणा भी दी और प्रार्थना की, महाराज! आप मेरी भेंट को आद्योपान्त देखने का कष्ट करना।" स्वामी जी भेंट को लेकर चल पड़े और मार्ग में अवसर पाकर देखने लगे। परन्तु जब खोलकर देखा तो सत्यार्थ प्रकाश निकला। एक दम क्रोधित हो गये और सत्यार्थ प्रकाश को फेंक कर मारा। ज्यों ही सत्यार्थ को फेंका तो ध्यान आ गया कि भगत जी ने मेरी कितनी सेवा की। मैं मरणासन था, मर भी सकता था, मुझे उन्होंने जीवन दान दिया– और उनके द्वारा प्रेम की भेंट भी मैं नहीं देख सकता जबकि मैंने वचन दिया था कि इस भेंट को अवश्य देखूंगा। मन में सोचा चाहे कुछ भी हो मैं इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ूंगा। यह सोचकर ग्रन्थ को उठा लिया और पढने लगे। ग्रन्थ का पढ़ना था– जीवन का कांटा बदल गया और स्वामी जी पूर्ण वैदिक धर्मी हो गये। सारा जीवन वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार किया। इस को कहते हैं स्वाध्याय का जादू! स्वाध्याय से जीवन के जीवन बदल जाते हैं।

महात्मा मुंशी राम जी जब वे वकील थे। तब वे मांस-भक्षण करते थे। आर्यधर्म में आकर सत्यार्थप्रकाश पढ़ना प्रारम्भ किया। सत्यार्थप्रकाश पढ़कर उन्होंने मांस खाना छोड़ दिया था। इस प्रकार स्वाध्याय दोषों को दूर करने और सद्गुणों का देने का सबसे बड़ा साधन है।

छान्दोग्योपनिषद् में स्वाध्याय की महिमा इस प्रकार लिखी है :—

"आचार्य कुलाद्वेदमधीत्य यथाविधा नं गुरोः कर्मांति शेषेणाभि समावृत्य कुटुम्बे शुचौदेशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठा प्याहिंसन् सर्व भूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभि सम्पद्यते। न च पुनरावर्तते ॥

॥८।१५। १ ॥

'ब्रह्मचारी आचार्य कुल से विधिपूर्वक वेद पढ़कर गुरु की सेवा शुश्रूषा पूर्णतया करता हुआ समावर्तन संस्कार करके गृहस्थाश्रम में रहता हुआ, पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ अपने परिवार और जनता को धार्मिक बनाता हुआ आत्मा में सब इन्द्रियों को स्थापित कर तीर्थ स्थान और अन्यत्र भी अहिंसा करता हुआ मरण प्रयन्त इस प्रकार का व्यवहार करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है तथा आवागमन के चक्कर से छूट जाता है।"

स्वाध्याय से मुक्ति की प्राप्ति होती है-इस लिए साधक को विशेष रूप से स्वाध्याय की ओर ध्यान देना चाहिए।

राष्ट्र का उत्थान भी सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से ही सम्भव है। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और सामाजिक विकास शिक्षा द्वारा ही हुआ करता है। शिक्षा की परिभाषा भी विद्वानों ने यही की है :—Education means harmonious development of one's mental, moral and

physical faculties, शिक्षा का अर्थ शारीरिक, चारित्रिक, बौद्धिक सर्वाङ्गीण विकास करना है।

Education is a knowledge which makhes us beautiful in three things body, mind and soul.

शिक्षा वह ज्ञान है जो मनुष्य के शरीर मस्तिक और आत्मा का सुन्दर निर्माण कर देती है।

परन्तु आज शिक्षा का लक्ष्य सर्वाङ्गीण विकास न होकर नौकरी करना, पैसा कमाना और दहेज युक्त विवाह करना वन गया है।

हमारे देश में लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ क्यों की थी ? उसने कहा था कि "I want a class from Indian in blood and colour but English in taste and opinion.

अर्थ:—मैं भारत में ऐसा वर्ग वनाना चाहता हूं जो ऊपर से भारतीय होगा परन्तु अन्दर से अंग्रेजी होगा ।,, यह शिक्षा भारत को अंग्रेज वनाने के लिये लागू की थी इस लिये इस शिक्षा को पढ़कर भारत वासी अपने धर्म को त्याग रहे हैं। आज शिक्षा के नाम से वर्वादी हो रही है। अश्लील साहित्य का प्रचलन है। नाटक उपन्यास आज के युवक को पथभृष्ट कर रहे हैं। राष्ट्र का उत्थान करने के लिये आज राष्ट्र नायकों को चाहिए कि अश्लील साहित्य को देश से समाप्त करें और सुसाहित्य का प्रचन करें ।

स्वाध्याय का दूसरा अर्थ आत्मनिरीक्षण भी है। सु या स्व उपपद् होने पर आङ् अधि पूर्वक अध्ययनार्थक् इङ्' धातु से 'ईङश्च, इस सूत्र से घञ् प्रत्यय करने पर स्वाध्याय शब्द सिद्ध होता है "सुष्ठु आवृत्य अध्ययनं स्वाध्याय,, भली भान्ति आवृत्ति पूर्वक अध्ययन करना स्वाध्याय है या "स्वमध्ययनं स्वाध्याय:" आत्मीय अध्ययन करना।

जो व्यक्ति अपने जीवन का निरीक्षण करता रहता है वह बुराइयों से दूर हो जाता है। इस लिये विद्वानों ने कहा है कि :—

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत् नरश्चरितमात्मनः।
किं ये पशुभिस्तुल्यं किं सत्पुरुषैरिति॥

अर्थः—प्रतिदिन मनुष्य को अपने आचरणों का निरीक्षण करना चाहिए। कौन से मेरे कर्म सत्पुरुषों के समान है और कौन से मेरे कर्म पशुओं के तुल्य हैं।

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि स्वाध्याय से अपने जीवन को उंचा उठाये।

इति स्वाध्याय विषय

अथ ईश्वर प्रणिधान

पांचवा नियम ईश्वर प्रणिधान है। इसका अर्थ है कि जो भी कर्म किया जाय उन सब को फल सहित ईश्वर के अर्पण कर दिया जाये। इस नियम का लक्षण करते हुए वेद व्यास ऋषि लिखते हैं 'ईश्वर प्रणिधानं, तस्मिन् परम गुरौ सर्व कर्मार्पणम्,, उस परम गुरु परमेश्वर में सब कर्मों को अर्पण करना ईश्वर प्रणिधान है।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज भी लिखते हैं-"परम गुरवे परमेश्वर सर्वात्मादि द्रव्य समर्पणम्" इस का अर्थ है-"सब सामर्थ्य, सब गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेम भाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिए समर्पण करना"

ईश्वर प्रणिधान योग साधना का प्राण है। महर्षि पतन्जलि जी महाराज ने तो अपने योग दर्शन में इस पर बड़ा बल दिया है और चार बार यह लिखा है कि यदि मन के रोकने में सफलता प्राप्त करनी है, सब क्लेशों को समाप्त करना है और समाधि को प्राप्त करना है तो उस का उपाय ईश्वर प्रणिधान है। वे लिखते हैं:-"समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्"
२।४५ ॥

ईश्वर में निज अर्पण करने से समाधि की सिद्धि हो जाती है।

आप पूछना चाहेंगे कि ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि कैसे हो जाती है ? इस का सरल सा उत्तर यही है कि मन एक ही है जब यह प्रभु की भेंट चढ़ा दिया जाता है तो सांसारिक विषय अपने आप घुट जाते हैं। सांसारिक विषय तो तब तक ही तंग करते हैं जब तक यह मन ईश्वर अर्पित नहीं होता।

कबीर जी ने भी लिखा है :—

कबीरा यह मन एक है, चाहे जहां लगाय।
भावें प्रभु की भक्ति कर, भवें विषय कमाय॥

बहुत व्यक्ति यह कहते हुए सुनाई देते हैं कि समाधि लगाना बड़ा कठिन कार्य है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। कहना यूं चाहिए कि समाधि लगाना सबसे सरल कार्य है और सांसारिक कार्यों को करना अधिक कठिन है। गेहूं उत्पन्न करने के लिए कितने साधनों की आवश्यकता है। एक फैक्टरी में किसी चीज के निर्माण पर कितना व्यय आता है और कितना समय लगता है परन्तु समाधि के लिये कुछ भी टन्टे करने की आवश्यकता नहीं है। घर बसाने के लिये रात दिन कितना घोर परिश्रम करना पडता है, सच मुच नानी याद आ जाती है-परन्तु समाधि के लिये केवल दो आंखें बन्द करके बैठना पड़ता है और अपने को ईश्वर अर्पण करना पड़ता है।

बस इसी से सारा कार्य सिद्ध हो जाता है। जो लोग समाधि को कठिन और असम्भव कार्य मानते हैं। उनको समाधि लगाने के रहस्य का पता नहीं है मैं उन साधकों की सेवा में कहना चाहता हूं कि आप ध्यान में बैठ कर आंखे बन्द करके प्रभु को पुकारिये और कहिये "हे प्रभो ! मुझे इन संसार के विषयों ने दवा लिया है, मेरा जीवन-रथ बड़े भारी कीचड़ में फंस चुका है, मैं इस संसार की ज्वाला में जल रहा हूं, मुझे बचाओ। आपने कितने ही व्यक्तियों को ऋषि बना दिया और योगी बना दिया है। मैं तो जब जानू जब मुझे भी योगी बना दो। मेरा उद्धार आप ही कर सकते हैं। मैंने अपनी जीवन डोरी आज आप के हाथों में सौंपदी है मैं तेरा हो गया हूं अतः प्रभो ! उठाओ इस प्रकार जब साधक प्रभु को अर्पित हो जाता है तो शरीर में रोमाँच होने लगता है और मन एक दम शान्त हो जाता है और वृति स्थित हो जाती है।

बुल्ला भक्त ने भी कहा है कि :—

बुल्ला रवदा कि पाणा।
उत्थों पुट के इत्थों लाणा॥

अर्थ:—संसार के विषयों से मन हटा कर प्रभु में लगा दो-यही प्रभु प्राप्ति का मार्ग है। कितना सरल मार्ग है यह। जिस व्यक्ति ने ईश्वर प्रणिधान के मर्म को जान लिया उसके लिये समाधि सरल है और जिसने इस रहस्य को नहीं जाना वह जीवन भर भटकता रहेगा।

सच बात तो यह है कि ध्यान के समय भक्त की आंखों से प्रेमाश्रु न टपक पड़े और रोमांच न होवे तो वह ध्यान ही क्या। भजन करते हुए प्रभु के प्रेमालाप में जिस के अश्रु वह निकलते हैं वह भक्त अपने प्यारे प्रीतम को मिनटों क्षणों में रिझा लेता है। किसी ने ठीक ही कहा है :—

नैनों की कर कोठरी, पुतली पलग बिछाय।
पलकों की छिक डालकर, तुझ को लेऊं रिझाय॥

ईश्वर प्रणिधान करने वाले साधक को प्रभु भी वर लेता है। क्योंकि जब साधक ने पहले प्रभु को वर लिया, अपने सर्वस्व को उसके लिये न्यौछावर कर दिया और अपना सब कुछ उसे मान लिया, तो प्रभु पिता उसे न वरे ऐसा कभी भी नहीं हो सकता। परमात्मा ऐसे भक्त के लिये अपने सारे स्वरुप को खोलकर रख देता है। उसे अपनी गोदी में बिठा लेता है। मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट यह लिखा है कि परम पिता परमात्मा उसी को प्राप्त होता है जिस पर वह स्वयं अनुग्रह कर देता है।

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया—न बहुना
श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्त स्यैष आत्मा
विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

परमात्मा प्रवचन करने से प्राप्त नहीं होता है, न बुद्धि के तर्क से प्राप्त होता है और न अनेक शास्त्र पढ़ने या सुनने से प्राप्त होता है। प्रभु उसी को प्राप्त होता है जिसको वह वर लेता है। वेद मे भी यही लिखा है। जब भक्त प्रभु को धारण कर लेता है और अपने को उसके अर्पित कर-देता है तो तब ही परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

ऋग्वेद ८।४४।२३ वां मन्त्र है:—

यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घास्या अहम्।
स्युस्ते सत्ता इहाशिषः ॥

अर्थः—हे अग्नो जब "मैं" "तूं" बनेगा या जब "तूं" "मैं" बनेगा तभी तेरे सारे आशीर्वाद सत्य सिद्ध होंगे।

हे ज्योतिस्वरुप ! आपकी स्तुति करके हम आपके सब दिव्य गुणों को अपने जीवन में धारण करना चाहते हैं। आपके अनुपम वैभव को अपनी फटी पुरानी गूदड़ी में लपेट लेना चाहते हैं। आप यह न सोचना कि हम धन

मांगने तेरे द्वार पर आये हैं। हे प्रभो ! धनादि वैभव तो आपने हमें खूब दिया है। अब तो यह भी नहीं भाता। आज तो हम कोई वड़ी चीज मांगने के लिये आये हैं। हमारी इस बाल लीला पर हंस के न रह जाना अब तो जब "मैं" "तू" बन जायेगा और "तूं" "मैं" बन जाऊंगा, तभी मुझे सन्तोष होगा। आपके भी सभी आर्शीवाद तभी सफल होंगे। इसलिये आज से "त्वमस्माकं तवस्मसि" आप हमारे हैं और हम आपके हैं॥

जब इस प्रकार का सम्बन्ध भक्त भगवान् से जोड़ लेता है तो फिर उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती। स्वामी राम तीर्थ के जीवन की घटना सुनाता हूँ।

स्वामी रामतीर्थ जी प्रभु विश्वासी व्यक्ति थे। एक बार एक सज्जन ने स्वामी जी से कहा कि आपने नोकरी क्यों छोड़ दी ? इस प्रकार आपका कार्य कैसे चलेगा ? पेट का पालन भी धर्म होता है। दूसरों के द्वार पर जाने से और भगवां भेष धारण करने से करतार नहीं मिलता। गृहस्थ में सब कुछ हो सकता है और गृहस्थ त्याग करना महा पाप भी है। इस बात को सुनकर स्वामी जी बोले "नोकरी करना नोकरों का काम है। मैं तो राम बादशाह हूं। मैं नोकर नहीं हूं। मैं मालिक हूं, पांच नोकर मेरी रात-दिन सेवा कर रहें हैं। पेट का पालन निस्सन्देह धर्म है, परन्तु धर्म का पालन पेट के बाप का पालन है।"

सन् १९०२ में शिकागो (अमेरिका) में एक कान्फ्रेंस होने वाली थी, उसमें अनेक वड़े २ महापुरुषों को बुलाया गया था। स्वामी रामतीर्थ को भी जाना था। जिस समय ये जाने लगे इनके पास कुछ नहीं था। ये हवाई अड्डे पर चले गये। एक सेठ ने पूछा कि आप कहां जा रहे हैं ? कहा 'अमेरिका' सेठ बोला "क्या पास के लिये पैसे है ?" उत्तर मिला "पैसों की कोई आवश्यकता नहीं है" इस पर सेठ मुग्ध हो गया और इनका पास जापान तक का बनवा दिया। जापान से एक भारतीय कम्पनी का जहाज अमेरिका जा

रहा था उसने उसको अमेरिका जा पहुंचाया। जिस समय ये सान्फ्रान्सिसको में जहाज से उतरे उस समय एक अमेरिकन से बात हुई। वह किसी दैनिक समाचार पत्र का सम्पादक था। जिस समय उसने एक गेरवे वस्त्र धारी को देखा तो उस से उसका हाल पूछे विना न रहा गया। उस अमेरिकन ने पूछा—

अमेरिकन:—तुम कहां से पधारे हो ?

राम:—"जापान से आ रहा हूं।"

अमेरिकन:—"तुम्हारा सामान कहां है ?"

राम:—राम ने कभी सामान नहीं रखा।

सम्पादक:—खाने पीने का सामान-व्यय करने को पैसे हैं ?

राम:—राम को खाने पीने की आवश्यकता नहीं। कभी जरुरत हुई तो पत्तों से गुजारा हो जाता है।

सम्पादक:—तुम एक अजीव आदमी हो। जो विना पैसे अमेरिका चले आये। यहां पर कैसे रहोगे ? यदि तुम्हारी जेव में पैसा है तो अमेरिका तुम्हारा है। वरना भूखे मरना होगा।

राम:—"मैं भूखा जिन्दा रह सकता हूं और कभी आवश्यकता हुई भी तो कहीं न कहीं से मिल भी जायेगा।

सम्पादक:—तुम अजीव आदमी हों तुम वताओ तो सही तुम कौन हो ? कैसे यहां आये हो ?

राम:—"मैं राम हूं। भारत से आया हूं। कान्फ्रेंस में जा रहा हूं।

सम्पादक:—क्या आप वही राम है-जिनके लैक्चर पुस्तकों में आते रहते हैं और समाचार पत्रों में निकलते रहते हैं। क्षमा करना, अमेरिका ही नहीं सारा संसार आपका है।

सम्पादक जी ने अपने कार्यालय में तार भेजा और समाचार पत्रों में निकाल दिया कि राम जी अमेरिका आ गये हैं।

रामतीर्थ को लेने के लिये गाड़ी पर गाड़ी आ गई। इस पर राम

ने सम्पादक से कहा कि मै अमेरिका में भूखा तो नहीं मर जाऊंगा। सम्पादक ने कई वार फिर क्षमा याचना की।

एक दिन अमेरिका के राजा रोज वैल्ट ने उनसे वातचीत की और कहा कि कुछ द्रव्य तो स्वीकार करें। उसका उत्तर देते हुए कहा "राम को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। सारी दुनिया राम की ही है। राम तो वे परवाह वादशाह हैं। क्या राम ने मांगने के लिये सन्यास लिया है।"

इसे कहते हैं ईश्वर अर्पण जीवन। ईश्वर विश्वासी व्यक्ति वड़ी से वड़ी आपत्ति आने पर भी नहीं घवराता एक घटना आपको सुनाता हूं।

एक वार एक प्रभु विश्वासी नव युवक अपनी नव विवाहित धर्मपत्नि के साथ नाव में समुन्द्र यात्रा कर रहा था। जिस समय नाव सागर के मध्य में चली गई-उस समय एक बडा भयंकर तुफान उठा। सव यात्री डर गये। उसकी-पत्नि भी डर गई और व्याकुल हो गई। अपने पति को निश्चिन्त वैठा देख कर कहने लगी कि आप कैसे निश्चिन्त वैठे है ? इतना सुन-उसने म्यान से तलवार निकाल धीरे से अपनी पत्नि के सिर पर रख दी और पत्नि से प्रश्न किया कि क्या तुम इस म्यान से डरती नहीं हो ? पत्नि ने कहा "क्या, आप मेरे साथ खेल कर रहे हैं। आप की तो मैं प्राणों से प्यारी हूं। आप भी मुझे प्राणों से प्यारे हैं। आपसे मुझे डर कैसे ? इस उत्तर को सुनकर उसने उत्तर दिया कि प्यारी ! देख, जिस प्रकार तुम इस तलवार से नहीं डरती-उसी प्रकार से परमात्मा के इस तूफान से भी नहीं डरना चाहिए। परमात्मा हमारा पिता माता है। उसे तो हमारे से अत्यधिक प्यार है। वह हमें कभी नष्ट नहीं कर सकता। इस वात को सुन कर उसकी धर्म पत्नि लज्जित हो गई। किसी ने ठीक ही कहा है कि:—

इनसान की अजमो हिम्मत —
से जब दूर किनारा होता है।

सागर में टूटी किस्ती का —

इक भगवान ही सहारा होता है ।।

परमात्मा का विश्वास करने वाले व्यक्ति सब चिन्ताओं से पार हो जाते हैं और जीवन में महान बन जाते है । बाबा हरिदास जी की घटना आप ने सुनी होगी ।

अकबर के दरबार का गवैया था "तान सेन" कहते हैं ऐसा कवि हुआ न होगा । एक दिन अकबर ने कहा 'तान सेन यह गाना तुमने किससे सीखा है ?" उत्तर मिला "मेरे गुरु हैं बाबा हरिदास जी" अकबर "तानसेन कभी अपने गुरुजी का गाना सुनवाओं" तानसेन:—बादशाह सलामत ! यदि आपने मेरे गुरु जी के मनमोहक गान सुनने हैं तो आपको कुछ कष्ट करना होगा । आप को जंगल में चलना होगा जहां गुरुदेव तपस्यारूढ हैं । वे कभी नगर में नहीं आते । वे वीतराग सन्त हैं" अकबर तान सेन की बात सुनकर वन में चलने के लिए तैयार हो गया । दोनों वन में पहुंच जाते हैं तानसेन ने अकबर को एक पेड़ के समीप बैठा दिया और स्वयं गुरु जी के तानपूरे को उठा कर अशुद्ध राग अलापने लगा । गुरु जी ने ताड़ लिया कि तानसेन को छोड़ कर और कोई तानपूरे को नहीं उठा सकता । यह तो तानसेन ही हो सकता है । परन्तु यह अब तक भी इस गाने को अशुद्ध अलाप रहा है । यह राजदरबार में भी मेरा अपमान कराता होगा । तानसेन से बाबा हरिदास तानपूरा ले लेते हैं और गाना प्रारम्भ करते हैं । सितार बजते ही एक विचित्र मनोहर दृश्य उपस्थित हो गया । गाना क्या था-एक अमृत की झड़ी लग गई । उस मधुर तान को सुनने के लिये वन के सब पशु पक्षी मृग इकठ्ठे हो गये । वृक्ष मस्ती से झूमते से प्रतीत होने लगे । वायु-स्तब्ध सी हो गई । एक आनन्द का सन्नाटा सा छा गया । ऐसा लगता था मानो किसीने कण-२ में आनन्द और मस्ती को बखेर दिया है । अकबर और तानसेन की ऐसी समाधि

लगी कि सुध बुध ही भूल गये। कुछ देर के बाद जब गाना पूरा हो गया तो तानसेन नतमस्तक हो गुरु जी का आशीर्वाद लेकर चल पड़ा। अकबर की तो अब तक समाधि लगी हुई है और उनका मन उठना ही नहीं चाहता था। तानसेन को देखते ही बादशाह ने पूछा "तानसेन ! गाने तो पहले भी सुने थे परन्तु आज तक इतना आनन्द नहीं आया। तुम्हारे गाने में इतना आनन्द क्यों नहीं आता ? इस बात को सुनकर तानसेन बोला "महाराज ! सुनो, मेरे गुरु देव के गाने में इतना आनन्द क्यों आया और मेरे में क्यों नहीं आता। मैं तो केवल दिल्ली पति का गवैय्या हूं परन्तु मेरे गुरुदेव विश्वपति के गवैय्या हैं। यही कारण है कि मेरे गुरुदेव जब गाते हैं तो आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता है।"

ईश्वर प्रणिधान करने से मनुष्य इतना महान बन जाता है कि-संसार के प्राणि उसके पास बैठ कर ही सब दुःखों से दूर हो जाते हैं।

जब तक मनुष्य ईश्वर अर्पित नहीं होता और ऊपर २ से ही भक्ति करता है तब तक मन शान्त नहीं होता। यह भक्ति नहीं-केवल दिखावा मात्र है। अकबर और एक पतिव्रता स्त्री का दृष्टान्त यहां स्मरण रखने योग्य है।

एक पतिव्रता स्त्री का पति कहीं लुप्त हो गया। वह नारी उसको खोजने के लिये चल पड़ी और उसके खोजने में पागल सी हो गई। उसे अपने पति के अतिरिक्त अब दुनियां में और कुछ नहीं भाता था। बेचारी मारी २ फिर रही थी। मार्ग में कहीं अकबर बादशाह नमाज पढ़ रहे थे। समीप से निकलते हुए उस पतिव्रता का वस्त्र अकबर को छू गया। इस बात का पता पतिव्रता को नहीं लगा क्योंकि वह अपने पति की चिन्ता में लीन थी। वस्त्र का छूना था कि बादशाह क्रोध में पागल हो उठे और बोले "तुम कौन हो ? तुमने हमारी नमाज भंग कर दी है। क्या तुम देखकर नहीं चल रही हो ? बादशाह को आग बबुला हुए देख कर वह नारी बोली:—

नर राची सूफी नहीं तुम कस लख्यो सुजान ।
कुरान पढत बौरा भयो नहीं राचयो रहमान् ॥

अर्थ:—मैं एक पुरुष के पीछे पागल हूं इस कारण से मुझे यह पता नहीं लगा कि कब मेरा पल्ला तुम्हें छू गया। परन्तु तुम तो सबसे बड़े खुदा के पीछे पागल हो और फिर तुम्हें इस छोटे से वस्त्र का भान हो गया। ऐसा लगता है तुम खुदा की भक्ति नहीं कर रहे-अपितु कुरान की आयतें ही पढ़ रहे हो यदि तुम रहमान के पीछे पागल हो जाते तो तुम्हें इन सांसारिक विषयों का भान नहीं हो सकता था।

इसे कहते हैं ईश्वर प्रणिधान जब तक मनुष्य भगवान के पीछे पागल नहीं हो जाता तब तक उसकी समाधि कहां ? बुल्ला भक्त ठीक ही कहकर गये हैं :—

बुल्ला आशिक हो यूं रबदा मुलामत होवे लाख।
लोग काफिर काफिर आखदे तू आहो आहो आख ॥

ईश्वर प्रणिधान कैसा हो ? इस विषय में वेद व्यास ऋषि लिखते हैं :—

शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा ।
स्वस्थः परिक्षीण वितर्क जालः ॥

संसार बीज क्षयमीक्षमाणः ।
स्यान्नित्ययुक्तोऽमृत भोग भोगी ॥

अर्थ:—"शय्या पर हो या आसन पर स्थित हो, अथवा मार्ग में चलता हो, अपने में स्थित, संशय आदि वितर्क जाल जिस के क्षीण हो गये हों, ऐसा वह संसार के बीज को क्षय करने की इच्छा करता हुआ नित्ययुक्त अमृत भोग का भोगी होता है।"

व्यास जी महाराज ने ईश्वर प्रणिधान का कैसा सुन्दर चित्र खींचा है। किसी भी अवस्था में हो, चाहे चारपाई पर हो, चाहे आसन पर हो, चाहे मार्ग में चल रहा हो, सब अवस्थाओं में परमात्मा के अन्दर स्थित रहना चाहिए और संसार के बीज जन्म मरण के बन्धन को काटते रहना चाहिए।

यह आप निश्चय जान लीजिये जो व्यक्ति प्रभु परायण नहीं रहता वह पाप से नहीं बच सकता। ईश्वर प्रणिधान ही वह साधन है जो मनुष्य को पाप से बचा सकता है। गीता में लिखा है :—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि-
सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन
पद्म पत्रमिवाम्भसा ॥ गी-५।१०

अर्थात्—

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल में कमल के पत्ते के सदृश पाप से लिप्त नहीं होता।

वास्तव में पाप से बचने का दूसरा मार्ग संसार में नहीं है। परन्तु आजकल कुछ लोग ईश्वर प्रणिधान का भी दुरुपयोग करते हैं। लो आपको एक रोचक बात सुना देते हैं—

एक घर में एक पुरुष एक स्त्री और कुछ बाल बच्चे थे। एक दिन पुरुष ने अपनी स्त्री से कहा "मेरा गुरु आया है-उसके लिये भोजन बनना है"।

स्त्री—"हमको वह गुरु क्या दे जावेगा"।
पुरुष:—"देना तो क्या—कुछ न कुछ ले ही जावेगा।
पत्नि:—"फिर हमें क्या लाभ" ?

पुरुषः—"दिन भर मैं कितनी असत्य बोलता हूं और गुरु की कसम खा लेता हूं । चलो एक वर्ष में कुछ भेंट करते हैं—क्या हुआ । मरेगा तो वही मरेगा ।

पत्निः—"फिर ठीक है । कोई महंगा सौदा नहीं"

एक दूसरा पुरुष भी इन वातों को सुन रहा था । उसने इन भले पुरुषों से कहा कि—"हमने तो परमात्मा को ही गुरु मान रखा है । इस सौदे में हमें यह लाभ है कि हमें कुछ भेंट चढानी नहीं होती"

इस प्रकार मूर्ख लोग ईश्वर भक्ति में भी ठग्गी करते हैं । परन्तु सच्चे भक्त ऐसा नहीं करते ।

जिस समय पाण्डव लोग जंगलों में कष्ट उठा रहे थे । एक दिन द्रोपदी ने दुःखी होकर धर्म पुत्र युधिष्ठिर से कहा कि आप प्रभु भक्त हैं । आप प्रभु से प्रार्थना क्यों नहीं करते कि "प्रभु इन सब कष्टों को दूर कर दें । युधिष्ठिर ने उत्तर दिया "मैं व्यापार के लिये भक्ति नहीं करता प्रत्युत मुझे भक्ति से सन्तोष मिलता है ।" इसे ही सच्ची भक्ति कहते हैं । प्रभु का सच्चा भक्त तो यही कहता हैं कि:—

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥

यह भावना उत्पन्न होने पर स्वयं समाधि सिद्ध हो जाती है ।

(क्रमशः)

॥ भारतीय संस्कृति और गाय ॥

नैष्ठिक जी की तडपती लेखनी से लिखा गया यह अमूल्य साहित्य है। आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक गोमाता का अपूर्व इतिहास वर्णित है। गोमाता का वेदों में क्या महत्व है ? महापुरुषों की दृष्टि में गौ का क्या स्थान है ? गौ कितना उपयोगी जीव है ? इसके साथ २ गोमाता के दुग्ध, घृत, दहि, मूत्र एवं गोमय की आयुर्वेद सम्मत चिकित्सा का भी पूर्ण वर्णन है। लेखक ने गोमाता को कराहती अवस्था का करुण वर्णन कि[illegible]। जिसने भी एक बार पढी उसकी आंखों में गोमाता के प्रति दो आंसू टपक पड़े। आप भी अवश्य पढ़िये। गोमाता के आधार पर राष्ट्र का उत्थान संभावित है। भारतीय संस्कृति की यह पृष्ठभूमि है। इसी के आधार पर समस्त हिन्दु जाति का कर्मकाण्ड आधारित है। यह प्रलेखन ऐतिहासिक प्रमाणों से भरपूर है। पढ़िये ! अवश्य पढ़िये !!

॥ पन्चमहायज्ञ सन्देश ॥

सन्देश ग्रन्थमाला का यह चतुर्थ पुष्प है। यज्ञों के प्रति हिन्दु जाति आज उपेक्षा भाव दिखा रही है। पुरातन काल में यज्ञों की वाढ आई हुई थी। 'निकाये निकाये नः पर्जन्यो वर्षतु' जनता की इच्छा से ही बादल वृष्टि करते थे। दुर्भिक्ष का नामोनिशान नहीं था। प्राणीमात्र सुख की मधुर वंसी वजाता था। यज्ञधूम से नभ-मंडल व्याप्त रहता था। संसार रोगों से कोसों दूर था। परन्तु आज सर्वत्र रोगों का साम्राज्य दिखाई दे रहा है। डाक्टरों की बाढ़ आई हुई है। करोड़ों रुपया रोगों पर फूंका जा रहा है। यज्ञों के महत्व से जनता अनभिज्ञ है। लेखक की लेखनी उद्बुद्ध करना चाहती है। पढ़िये ! अवश्य पढ़िये !! जीवन में प्रेरणा लीजिये और जीवन की दौड़ में अग्रसर होइये। सन्देश ग्रन्थमाला का यह पुष्प आप के घरों में सुगन्धि और नैरोग्य का सन्देश लायेगा। घर के आंगन सुशोभित हो उठेंगे। जीवन एक करवट लेगा। नवीन सात्त्विक जीवन का प्रारम्भ होगा। पढ़िये ! अवश्य पढ़िये !!

★ ब्रह्मचर्य संदेश ★

इसके सुयोग्य लेखक श्री ब्रह्मचारी बलदेव जी नैष्ठिक हैं जिसने भी इस अमर सन्देश को सुना वह अमरत्व प्राप्त कर गया। जिसके कानों में इसकी पवित्र ध्वनियां पड़ी वह ब्रह्मचर्य की अभूतपूर्व मस्ती में झूम उठा क्या कहें निराशा की काली रात में यह आशा का जलता दीपक है। दुराचार-सरिता के तीव्र प्रवाह में सम्बल का काम करता है। डूबते को तिनके का सहारा है। अनगिनत युवकों ने इसका अध्ययन किया। हर एक के हृदय से लेखक के प्रति श्रद्धा के दो आंसू टपक पड़े। संसार सागर में जीवनसारिणी पावन नौका है। अशान्ति के साम्राज्य में शान्ति की मधुर वीणा है। दुर्भावनाओं को मिटाने के लिए ब्रह्मास्त्र है। पढ़िये! अवश्य पढ़िये!! जीवन में निराशा की काली घटायें छिन्न-भिन्न हो जायेंगी। हृदय में ब्रह्मचर्य की तरल तरङ्गें तरङ्गित हो उठेंगी। आशा का नवीन संचार होगा। चमकता भाग्य नजर आयेगा। प्रसन्नता मानसिक सहेली बन जायेगी। सफलता पैर चूमेगी। नीरस संसार रसमय दीखने लगेगा।

भारतीय संस्कृति और यज्ञोपवीत

ओजस्वी लेखक ब्रह्मचारी बलदेव जी नैष्ठिक की यह अद्भुत कृति है भारतीय संस्कृति का मुख्य प्रतीक यज्ञोपवीत है। इसकी दुर्दशा को देखकर लेखक का हृदय तड़प उठा है। लेखनी का शौर्य चमक उठा है, जिस यज्ञोपवीत को यवनों की चमचमाती तलवारें भी न उतार सकी। जिस यज्ञोपवीत के लिए हिन्दु जनता सैकड़ों वर्षों तक संघर्ष करती रही आज उसकी दुर्दशा को देखकर लेखक की लेखनी कराह उठी है पढ़िये! अवश्य पढ़िये!! इस विषय की यह अनोखी एवं प्रामाणिक पुस्तक है। यज्ञोपवीत क्या है ? इसका क्या महत्व है ? इसकी तीन लड़ियों का क्या प्रयोजन है? इसके बनाने की क्या विधि है? इसके क्या उन्नति होती है? इसका क्या रहस्य है? ब्रह्मग्रन्थि क्या वस्तु है? इत्यादि गूढ प्रश्नों का उत्तर सरल एवं सरस भाषा में दिया गया है। पढ़िये! अवश्य पढ़िये!! अपने धर्म-चिह्न के महत्व का ज्ञान कीजिए और विपक्षी को मुंह तोड़ उत्तर दीजिये।

ब्रह्मचारी बलदेव नैष्ठिक सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक ने अभिनव भारती (प्रा०) लि० मुद्रण विभाग, नई मन्डी, मु०नगर में मुद्रित कराकर वैदिक योगाश्रम, शुक्रताल से प्रकाशित किया।